जून 2024

कुरुक्षेत्र

ग्रामीण विकास को समर्पित

जनजातीय कला और संस्कृति

हमारी पत्रिकाएँ

योजना
विकास को समर्पित मासिक
(हिंदी, अँग्रेज़ी, उर्दू व 10 अन्य भारतीय भाषाओं में)

प्रकाशन विभाग
सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय
भारत सरकार

कुरुक्षेत्र
ग्रामीण विकास पर मासिक
(हिंदी और अँग्रेज़ी)

आजकल
साहित्य एवं संस्कृति का मासिक
(हिंदी तथा उर्दू)

बाल भारती
बच्चों की मासिक पत्रिका
(हिंदी)

घर पर हमारी पत्रिकाएँ मंगाना है काफी आसान...

आपको सिर्फ नीचे दिए गए 'भारत कोश' के लिंक पर जा कर पत्रिका के लिए ऑनलाइन डिजिटल भुगतान करना है–
https://bharatkosh.gov.in/Product/Product

सदस्यता दरें

प्लान	योजना या कुरुक्षेत्र या आजकल		बाल भारती	
वर्ष	साधारण डाक	ट्रैकिंग सुविधा के साथ	साधारण डाक	ट्रैकिंग सुविधा के साथ
1	₹ 230	₹ 434	₹ 160	₹ 364

ऑनलाइन के अलावा आप डाक द्वारा डिमांड ड्राफ्ट, भारतीय पोस्टल आर्डर या मनीआर्डर से भी प्लान के अनुसार निर्धारित राशि भेज सकते हैं। डिमांड ड्राफ्ट, भारतीय पोस्टल ऑडर या मनीआर्डर '**अपर महानिदेशक, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय**' के पक्ष में **नई दिल्ली** में देय होना चाहिए।

अपने डीडी, पोस्टल आर्डर या मनीआर्डर के साथ नीचे दिया गया 'सदस्यता कूपन' या उसकी फोटो कॉपी में सभी विवरण भरकर हमें भेजें। भेजने का पता है- **संपादक, पत्रिका एकांश, प्रकाशन विभाग, कक्ष सं. 779, सूचना भवन, सीजीओ कॉम्प्लेक्स, लोधी रोड, नई दिल्ली-110003**

अधिक जानकारी के लिए ईमेल करें- pdjucir@gmail.com

हमसे संपर्क करें- **फोन : 011-24367453** (सोमवार से शुक्रवार सभी कार्य दिवस पर प्रात: साढ़े नौ बजे से शाम छह बजे तक)

कृपया नोट करें कि सदस्यता शुल्क प्राप्त होने के बाद सदस्यता शुरू होने में कम से कम आठ सप्ताह लगते हैं। कृपया इतने समय प्रतीक्षा करें और पत्रिका न मिलने की शिकायत इस अवधि के बाद करें।

सदस्यता कूपन (नई सदस्यता/नवीकरण/पते में परिवर्तन)

कृपया मुझे 1 वर्ष के प्लान के तहत .... पत्रिका .... भाषा में भेजें।

नाम (साफ व बड़े अक्षरों में) ....

पता : ....

.... ज़िला .... पिन ....

ईमेल .... मोबाइल नं. ....

डीडी/पीओ/एमओ सं. .... दिनांक .... सदस्यता सं. ....

कुरुक्षेत्र

ग्रामीण विकास को समर्पित

वर्ष : 70 ★ मासिक अंक : 8 ★ पृष्ठ : 52 ★ ज्येष्ठ-आषाढ़ 1946 ★ जून 2024

प्रधान संपादक : **कुलश्रेष्ठ कमल**

वरिष्ठ संपादक : **ललिता खुराना**

संयुक्त निदेशक (उत्पादन) : **डी.के.सी. हृदयनाथ**

आवरण : **पवनेश कुमार बिंद**

सज्जा : **मनोज कुमार**

संपादकीय कार्यालय

कमरा नं- 655, प्रकाशन विभाग, सूचना भवन,
सी.जी.ओ. काम्पलेक्स, लोधी रोड,
नई दिल्ली-110003

ई-मेल : kuru.hindi@gmail.com

वेबसाइट : publicationsdivision.nic.in

@publicationsdivision

@DPD_India

@dpd_India

कुरुक्षेत्र सदस्यता शुल्क

वार्षिक साधारण डाक : ₹ 230

ट्रैकिंग सुविधा के साथ : ₹ 434

नोटः सदस्यता शुल्क जमा करने के बाद पत्रिका प्राप्त होने में कम से कम 8 सप्ताह का समय लगता है।

पत्रिका ऑनलाइन खरीदने के लिए bharatkash.gov.in/product पर तथा ई-पुस्तकों के लिए Google play या Amazon पर लॉग-इन करें ।

कुरुक्षेत्र की सदस्यता की जानकारी लेने, एजेंसी संबंधी सूचना तथा विज्ञापन छपवाने के लिए संपर्क करें-

अभिषेक चतुर्वेदी, संपादक, पत्रिका एकांश

प्रकाशन विभाग, कमरा सं-3 779, सातवां तल,
सूचना भवन, सीजीओ परिसर,
लोधी रोड, नयी दिल्ली-110003

पत्रिका न मिलने की शिकायत हेतु ई-मेल : pdjucir@gmail.com या दूरभाषः 011-24367453 पर संपर्क करें।

कुरुक्षेत्र में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। यह आवश्यक नहीं कि सरकारी दृष्टिकोण भी वही हो। पाठकों से आग्रह है कि कॅरियर मार्गदर्शक किताबों/संस्थानों के बारे में विज्ञापनों में किए गए दावों की जांच कर लें। पत्रिका में प्रकाशित विज्ञापनों की विषय-वस्तु के लिए 'कुरुक्षेत्र' उत्तरदायी नहीं है।

इस अंक में

जनजातीय संस्कृति के संरक्षण के लिए अभिनव विज्ञान परियोजनाएं 5
-डॉ. निमिष कपूर

थेय्यम - जनजातीय सांस्कृतिक नृत्य 12
-गौरी एस

सांस्कृतिक समरसता के संरक्षण में आदिवासी कला का योगदान 17
-अमरेंद्र किशोर

जनजातीय संस्कृति : वैश्विक प्रतिनिधित्व का सामर्थ्य 26
-हेमंत मेनन

कृषि महोत्सव : आदिवासी संस्कृति का अभिन्न अंग 32
-डॉ. जगदीप सक्सेना

पूर्वोत्तर भारत के प्रसिद्ध आदिवासी लोकनृत्य 38
-डॉ. समुद्र गुप्ता कश्यप

भारत में जनजातियों की सांस्कृतिक विरासत 43
-सुमन कुमार

प्रकाशन विभाग के विक्रय केंद्र

नई दिल्ली	पुस्तक दीर्घा, सूचना भवन, सीजीओ कॉम्प्लेक्स, लोधी रोड	110003	011-24367260
नवी मुंबई	701, सी-विंग, सातवीं मंजिल, केंद्रीय सदन, बेलापुर	400614	022-27570686
कोलकाता	8, एसप्लानेड ईस्ट	700069	033-22488030
चेन्नई	'ए विंग, राजाजी भवन, बसंत नगर	600090	044-24917673
तिरुअनंतपुरम	प्रेस रोड, नई गवर्नमेंट प्रेस के निकट	695001	0471-2330650
हैदराबाद	कमरा सं- 204, दूसरा तल, सीजीओ टावर, कवादिगुड़ा सिकंदराबाद	500080	040-27535383
बैंगलुरु	फ़र्स्ट फ्लोर, 'एफ़ विंग, केंद्रीय सदर, कोरामंगला	560034	080-25537244
पटना	बिहार राज्य कोऑपरेटिव बैंक भवन, अशोक राजपथ	800004	0612-2683407
लखनऊ	हॉल सं-1, दूसरा तल, केंद्रीय भवन, क्षेत्र-ए, अलीगंज	226024	0522-2325455
अहमदाबाद	4-सी, नैप्च्युन टॉवर, चौथी मंजिल, एचपी पेट्रोल पंप के निकट, नेहरू ब्रिज कार्नर, आश्रम रोड	380009	079-26588669
गुवाहाटी	असम खादी एवं ग्रामोद्योग बोर्ड परिसर, पो. सिलपुखुरी, चानमारी	781003	0361-4083136

संपादकीय

भारत की सबसे उल्लेखनीय विशेषताओं में से एक इसकी विविधता के बीच एकता है। दुनिया की दूसरी सबसे बड़ी जनजातीय आबादी भारत में पाई जाती है। 2011 की जनगणना के आंकड़ों के अनुसार, भारत की 8.9% आबादी आदिवासी के रूप में वर्गीकृत है जिनकी संख्या लगभग 10.4 करोड़ है। भारत के संविधान के अनुच्छेद 342 के तहत 730 से अधिक अनुसूचित जनजातियां अधिसूचित हैं। भारत सरकार ने जनजातियों के विकास तथा उनकी विरासत और संस्कृति के संरक्षण पर प्राथमिकता के रूप में ध्यान केंद्रित किया है।

पूरे देश में आदिवासी लोगों की समृद्ध परंपराएं, संस्कृतियां और विरासत हैं, साथ ही उनकी जीवनशैली और रीति-रिवाज भी अद्वितीय हैं। आदिवासी समुदायों के विविध परिदृश्य में, स्वदेशी विरासत को संरक्षित करने के लिए शक्तिशाली उपकरणों के रूप में अभिनव विज्ञान परियोजनाओं का उपयोग किया जा रहा है। तेज़ी से बढ़ते वैश्वीकरण और आधुनिकीकरण के युग में ये पहल आशा की किरण है, जो सदियों पुराने रीति-रिवाज़ों और परंपराओं के अस्तित्व और पुनरुद्धार की उम्मीद जगाती है।

आदिवासी लोककला के विविध आयाम होते हैं, अनेक रूप और अभिव्यक्तियां होती हैं, चाहे वह बारीक रूप से तैयार किए गए लकड़ी के खिलौने या फर्नीचर का आकर्षण हो, धातु के काम के जटिल डिज़ाइन, या रंगीन कपड़ों की नाज़ुक बुनाई। भारत के जनजातीय क्षेत्रों की सांस्कृतिक विविधता, रीति-रिवाज़ और सामाजिक परंपराएं मंत्रमुग्ध कर देती हैं। यह एक अनोखी दुनिया है जहां सौहार्द, एकजुटता और सद्भाव सर्वोच्च होते हैं। जनजातीय कला दर्शाती है कि किसी जनजाति की 'संस्कृति' क्या है। यह उनके अतीत की कहानी के साथ-साथ उनके मूल्यों और मान्यताओं के बारे में भी बताती है।

कुछ आदिवासी समुदाय सुंदर मनके बनाने के लिए प्रसिद्ध हैं, जबकि अन्य अपनी रंगीन पेंटिंग या मूर्तियों के लिए जाने जाते हैं। मध्य प्रदेश के गोंड और झारखंड के संथाल के बीच रंगीन पेंटिंग स्थानीय भावनाओं का सार प्रस्तुत करती हैं; छत्तीसगढ़ के बस्तर में मुरिया नृत्य विचारों और भावनाओं के साथ गूंजते हुए जीवन की आध्यात्मिकता को दर्शाते हैं। ओडिशा की ढोकरा पीतल की मूर्तियां प्राचीन कहानियों की ओर ले जाती हैं, जबकि पश्चिम बंगाल की टेराकोटा बांकुरा भावनाओं को मृदा कला से व्यक्त करने का सबसे सरल माध्यम है।

आदिवासी लोग अपनी प्राचीन 'संस्कृति' को जीवित रखने के लिए कड़ी मेहनत करते हैं, जिसमें प्रकृति का संगीत, सामुदायिक परंपराएं, अनुष्ठान और कला शामिल हैं जिनका सीधा संबंध आसपास के परिवेश से है, कुदरती अवयवों से है। प्रकृति ने, उसके संसाधनों ने अपनी तरह इन आदिवासियों को सोचना, समझना और रहना सिखाया है।

भारत की जनजातीय परंपरा और सांस्कृतिक विविधता अपनी प्रासंगिकता और तर्कसंगतता के साथ दुनिया में सबसे प्राचीन और अद्वितीय है। जनजातीय कला का संरक्षण सुनिश्चित करना हमारे देश की सांस्कृतिक विरासत की समृद्ध परंपरा की रक्षा करने के समान है। पीढ़ियों से चली आ रही परंपराएं, मूल्य और अनुष्ठान समुदायों को मजबूत और स्थिर रखने में मदद करते हैं। आदिवासी समाज बौद्धिक ज्ञान का भी भंडार है। आदिवासियों का जीवन दर्शन प्रकृति से गहराई से जुड़ा है। आदिवासी अपने पर्यावरण की देखभाल करते हैं और अपने पुश्तैनी संसाधनों का बुद्धिमानी से उपयोग करके सम्पूर्ण प्रकृति के साथ सद्भाव से रहते हैं।

निसंदेह आदिवासियों का प्रकृति के प्रति सम्मान और प्रेम उनकी गहरी सूझबूझ का परिचायक है। आधुनिकता की अंधी दौड़ से पैदा हुए ग्लोबल वार्मिंग के खतरों से निपटने के लिए आज पूरी दुनिया को आदिवासी समाज से प्रकृति के साथ सामंजस्य से जीना सीखने की ज़रूरत है।

जनजातीय संस्कृति के संरक्षण के लिए अभिनव विज्ञान परियोजनाएं

-डॉ. निमिष कपूर

उन क्षेत्रों में जहाँ परंपरा नवाचार से मिलती है, एक गहन पुनर्जागरण चल रहा है। आदिवासी समुदायों के हृदयस्थलों में, जहाँ प्राचीन ज्ञान आधुनिक आकांक्षाओं के साथ जुड़ता है, एक नई कहानी लिखी जा रही है- जो विज्ञान और सांस्कृतिक संरक्षण के अभिसरण का उत्सव मनाती है। इस लेख में आदिवासी विरासत के समृद्ध ताने-बाने को सशक्त बनाने और सुरक्षित रखने में अभिनव विज्ञान परियोजनाओं की परिवर्तनकारी शक्ति का पता लगाने का प्रयास किया गया है।

"विविधता में एकता" भारत की सबसे उल्लेखनीय विशेषताओं में से एक है। दुनिया की दूसरी सबसे बड़ी जनजातीय आबादी भारत में पाई जाती है। 2011 की जनगणना के आंकड़ों के अनुसार, भारत की 8.9% आबादी आदिवासी के रूप में वर्गीकृत है। पूरे देश में आदिवासी लोगों की समृद्ध परंपराएं, संस्कृतियां और विरासत हैं, साथ ही उनकी जीवनशैली और रीति-रिवाज़ भी अद्वितीय हैं।

आदिवासी समुदायों के विविध परिदृश्य में, स्वदेशी विरासत को संरक्षित करने के लिए शक्तिशाली उपकरणों के रूप में अभिनव विज्ञान परियोजनाओं का उपयोग किया जा रहा है। तेज़ी से बढ़ते वैश्वीकरण और आधुनिकीकरण के युग में ये पहल आशा की नई किरण के रूप में है, जो सदियों पुराने रीति-रिवाज़ों और परंपराओं के अस्तित्व और पुनरुद्धार की उम्मीद जगाती है।

पूर्वोत्तर की धुंध भरी पहाड़ियों से लेकर मध्य भारत के धूप से सराबोर मैदानों तक, आदिवासी गाँवों में नवोन्मेषी विज्ञान परियोजनाओं की लहर चल रही है, जो सांस्कृतिक संरक्षण के लिए साझा प्रतिबद्धता से प्रेरित है। ये परियोजनाएं पारंपरिक ज्ञान और अत्याधुनिक शोध के अभिसरण को रेखांकित करती हैं, जो स्वदेशी ज्ञान प्रणालियों को संरक्षित करने के लिए एक समग्र दृष्टिकोण को मूर्त रूप देती हैं। जब समुदाय पर्यावरणीय क्षति, सामाजिक-आर्थिक हाशिए पर होने और सांस्कृतिक क्षरण की चुनौतियों से जूझ रहे हैं, तो ये पहल न केवल समाधान प्रदान करती है बल्कि आदिवासी विरासत के आंतरिक मूल्य की पुनः पुष्टि भी करती है।

पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, भारत सरकार तथा विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी मंत्रालय, भारत सरकार के अधीन विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग (डीएसटी) ने आदिवासी समुदायों की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित करने के महत्व को पहचाना है तथा इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए और विज्ञान परियोजनाओं को समर्थन

लेखक विज्ञान संचार विशेषज्ञ हैं। ई-मेल : nimish2047@gmail.com

इंफाल-पूर्वी मणिपुर में चरेई ताबा पॉटरी या कॉइल पॉटरी की प्राचीन विरासत कला को विज्ञान परियोजनाओं के साथ संरक्षित किया जा रहा है

देने के लिए महत्वपूर्ण कदम उठाए हैं। विभिन्न पहलों और योजनाओं के माध्यम से, सरकार सक्रिय रूप से अनुसंधान, दस्तावेज़ीकरण और संरक्षण प्रयासों को बढ़ावा दे रही है जो वैज्ञानिक ज्ञान को पारंपरिक ज्ञान के साथ एकीकृत करते हैं।

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग के प्रयास

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग (डीएसटी), भारत सरकार विभिन्न विज्ञान परियोजनाओं के माध्यम से जनजातीय संस्कृति को संरक्षित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, जो वैज्ञानिक अनुसंधान को सांस्कृतिक संरक्षण प्रयासों के साथ एकीकृत करता है।

डीएसटी आदिवासी समुदायों की स्वदेशी ज्ञान प्रणालियों का दस्तावेज़ीकरण और संरक्षण करने के उद्देश्य से परियोजनाओं की मदद करता है। इन परियोजनाओं में अक्सर शोधकर्ताओं, मानवविज्ञानियों और आदिवासी बुजुर्गों के बीच पारंपरिक प्रथाओं, औषधीय ज्ञान, मौखिक इतिहास और सांस्कृतिक अनुष्ठानों को रिकॉर्ड करने के लिए सहयोग शामिल होता है। इस जानकारी को डिजिटल बनाने और संग्रहित करने से, डीएसटी भविष्य की पीढ़ियों के लिए आदिवासी संस्कृति की निरंतरता और पहुँच सुनिश्चित करने में मदद करता है।

आदिवासियों की सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण के लिए विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग आदिवासी समुदायों से जुड़े सांस्कृतिक विरासत स्थलों के संरक्षण और जीर्णोद्धार के उद्देश्य से विज्ञान परियोजनाओं में शामिल है। इसमें विरासत स्थलों की स्थिति का आकलन और निगरानी करने, संरक्षण हस्तक्षेप की योजना बनाने और उनके महत्व के बारे में जागरूकता बढ़ाने के लिए रिमोट सेंसिंग, भौगोलिक सूचना प्रणाली (जीआईएस) और 3डी मॉडलिंग जैसी उन्नत वैज्ञानिक तकनीकों का उपयोग शामिल किया जा रहा है।

डीएसटी अंतःविषय अनुसंधान को बढ़ावा देता है जो आदिवासी क्षेत्रों में जैव विविधता और सांस्कृतिक परिदृश्यों की रक्षा के लिए पारंपरिक पारिस्थितिकीय ज्ञान (TEK)* को आधुनिक संरक्षण विज्ञान के साथ एकीकृत करता है। इन परियोजनाओं का उद्देश्य आदिवासी संस्कृतियों में निहित पारिस्थितिकीय ज्ञान को समझना और स्वदेशी प्रथाओं और मूल्यों का सम्मान करने वाली संरक्षण रणनीतियाँ विकसित करना है। वैज्ञानिकों, आदिवासी समुदायों और नीति निर्माताओं के बीच सहयोग को बढ़ावा देकर डीएसटी सांस्कृतिक विरासत की सुरक्षा करते हुए प्राकृतिक संसाधनों के सतत प्रबंधन में योगदान देता है।

नवाचारों के दोहन के लिए विज्ञान और प्रौद्योगिकी योजना (एसएटीएचआई) और समानता, सशक्तीकरण और विकास के लिए विज्ञान (एसईईडी) जैसे कार्यक्रमों के माध्यम से, डीएसटी उन विज्ञान परियोजनाओं के लिए वित्तपोषण और समर्थन प्रदान करता है जो आदिवासी समुदायों के बीच ज़मीनी स्तर पर नवाचार, उद्यमशीलता और सामाजिक समावेशन को बढ़ावा देते हैं ताकि आदिवासी समुदायों को सशक्त बनाया जा सके तथा वैज्ञानिक ज्ञान और प्रौद्योगिकी का उपयोग करके स्थानीय चुनौतियों का समाधान किया जा सके।

विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग के अंतर्गत उत्तर पूर्वी प्रौद्योगिकी अनुप्रयोग एवं प्रसार केन्द्र (नेक्टर)* द्वारा किए गए प्रयास

विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग के अंतर्गत उत्तर पूर्वी प्रौद्योगिकी अनुप्रयोग एवं प्रसार केन्द्र (नेक्टर) विभिन्न विज्ञान परियोजनाओं के माध्यम से प्रौद्योगिकी अनुप्रयोग प्रदान कर रहा है तथा जनजातीय लोगों की सांस्कृतिक विरासत के सतत दोहन के लिए समर्थन जुटा रहा है। संस्थान की परियोजनाओं में शहद उत्पादन का विस्तार किया गया है, जलकुंभी से पर्यावरण अनुकूल योग मैट का उत्पादन किया गया है, बांस-आधारित विज्ञान परियोजना आरंभ की गई है तथा मूल्य संवर्धन और बाज़ार संपर्क प्रदान करके बांस क्षेत्र को बढ़ावा देने में भी मदद की है।

पूर्वोत्तर भारत की सांस्कृतिक मान्यताओं में बांस का औषधीय और आध्यात्मिक महत्व है। पारंपरिक चिकित्सक स्वदेशी चिकित्सा पद्धतियों में उनके उपचार गुणों के लिए बांस के अर्क का उपयोग करते हैं। इसके अलावा, बांस को

*TEK – Traditional Ecological Knowledge

अक्सर आध्यात्मिकता से जोड़ा जाता है और कुछ समुदायों द्वारा इसे पवित्र पौधे के रूप में सम्मान दिया जाता है, जो अनुकूलन, विकास और प्रकृति के साथ सामंजस्य का प्रतीक है। असम में, बांस बिहू समारोहों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, जहाँ उत्सव के दौरान ढोल (ड्रम) जैसे बांस से बने वाद्ययंत्रों का उपयोग किया जाता है। नगालैंड में, बांस का उपयोग पारंपरिक मोरंग (सामुदायिक घर) बनाने के लिए किया जाता है जहाँ युवा विशेष रूप से कुंवारे लोग अनुशासन, रीति-रिवाज़ और परंपरा, सैन्य रणनीति, कला और संस्कृति आदि जैसी महत्वपूर्ण बातें सीखते हैं।

पारंपरिक मिट्टी के बर्तनों की संस्कृति के सतत विकास के लिए, नेक्टर ने असम के धुबरी के अशारिकंडी में पारंपरिक टेराकोटा और मिट्टी के बर्तनों के व्यवसाय में सुधार और उसके संरक्षण तथा उसे जारी रखने हेतु मदद की है। इसने इम्फाल-पूर्वी मणिपुर में 'चारेई ताबा पॉटरी' (कॉइल पॉटरी) की प्राचीन विरासत कला को संरक्षित करने में मदद की है और स्थायी आजीविका प्रदान करने वाले सांस्कृतिक सामानों के व्यापार को मज़बूत किया है। इसने रोज़गार के अवसर भी प्रदान किए हैं और महिलाओं और आदिवासी कुम्हारों को सशक्त बनाया है।

राज्य विशिष्ट प्रौद्योगिकी प्रदर्शन केंद्र (टीडीसी) स्थापित किए गए हैं। बांस क्षेत्र को बढ़ावा देने, इसके मूल्य संवर्धन और बाजार संपर्क स्थापित करने के लिए बांस और बेंत विकास संस्थान (बीसीडीआई), अगरतला, त्रिपुरा के सहयोग से एक बांस आधारित टीडीसी की स्थापना की गई है। पूर्वोत्तर क्षेत्र और देश के अन्य हिस्सों के प्रतिभागियों के प्रशिक्षण और कौशल विकास के लिए बीसीडीआई परिसर, अगरतला में नेक्टर-बीसीडीआई इनक्यूबेशन सह नवाचार और प्रौद्योगिकी प्रदर्शन केंद्र (आईआईटीडीसी) नामक एक संयुक्त केंद्र भी स्थापित किया गया है।

कल्म कटिंग या स्टेम सेटिंग की बांसुरी तकनीक

आदिवासी संस्कृतियों में बांसुरी बनाने की परंपरा

स्वच्छ और नवीकरणीय बिजली उत्पादन के लिए बांस आधारित गैसीफायर विकसित किया गया है

तने को काटने की बांसुरी तकनीक या तना लगाने की तकनीक जिससे बांस का तेज़ी से पुनर्जनन होता है

सदियों से चली आ रही है। नेक्टर ने बांसुरी बनाने की एक तकनीक विकसित की है। यह तने को काटने या तने को सेट करने की तकनीक है, जो बांस को तेज़ी से पुनर्जीवित करने में सक्षम बनाती है। इस विधि में बांस के तने के विशिष्ट भागों का चयन करना, उन्हें सटीक नोड्स पर सावधानीपूर्वक काटना और उन्हें नए बांस के पौधों को उगाने के लिए धरती में फिर से रोंपना शामिल है। एक बार जब ये पौधे परिपक्व हो जाते हैं, तो वे बांसुरी बनाने के लिए बांस का एक स्थायी स्रोत प्रदान करते हैं। यह समग्र दृष्टिकोण न केवल कच्चे माल की निरंतर आपूर्ति सुनिश्चित करता है, बल्कि कारीगरों और भूमि के बीच एक गहरा संबंध भी बनाता है, क्योंकि वे उन्हीं पौधों की खेती और देखभाल करते हैं जो उनके संगीत वाद्ययंत्रों को जीवन देते हैं। इस परियोजना के माध्यम से आदिवासी समुदाय आर्थिक लाभ के साथ अपनी सांस्कृतिक विरासत को बनाए रख सकते हैं।

जैसा कि हम जानते हैं कि भारत दुनिया में बांस का दूसरा सबसे बड़ा उत्पादक है। यह एक प्राकृतिक, पर्यावरण के अनुकूल, टिकाऊ और नवीकरणीय संसाधन है। बांस तेज़ी से बढ़ने में सक्षम है और वनस्पति और वन क्षेत्र को बढ़ाता है। यह स्वाभाविक रूप से मज़बूत सामग्री है, जो विभिन्न उद्देश्यों के लिए उपयोग करने योग्य है।

गैसीफायर और अन्य बांस उत्पाद

नेक्टर ने कई अन्य बांस उत्पादों की भी शुरुआत की है, जिनका औद्योगिक उपयोग बहुत अधिक है, जैसे बांस के प्रसंस्करण द्वारा 'अपशिष्ट' से उच्च ग्रेड चारकोल और सक्रिय कार्बन का उत्पादन। इसका उपयोग कीटाणुनाशक, दवा, कृषि रसायन और प्रदूषण तथा अत्यधिक नमी को सोखने के लिए किया जा सकता है। केंद्र ने मशीनीकृत

*NECTAR – North East Centre for Technology Application & Research

बांस ब्लाइंड्स, ऐक्रेलिक उत्पादों, फाइबर-आधारित स्वच्छता उत्पादों आदि के उत्पादन के लिए विभिन्न प्रौद्योगिकियों का भी समर्थन किया है। बांस का फर्नीचर एक अन्य औद्योगिक अनुप्रयोग है, जहां नेक्टर ने विज्ञान परियोजनाओं के माध्यम से अपनी मदद बढ़ायी है।

बांस पर आधारित गैसीफायर को स्वच्छ और नवीकरणीय बिजली तथा उच्च श्रेणी के चारकोल जैसे कई मूल्यवान उप-उत्पादों का उत्पादन करने के लिए विकसित किया गया है। नेक्टर ने पूर्वोत्तर के कुछ स्थानों पर कुछ गैसीफायर इकाइयों की मदद की है।

हरित सामग्री दृष्टिकोण के साथ बांस आधारित प्रौद्योगिकियां

नेक्टर विभिन्न प्रकार के निर्माण में बांस और बांस आधारित मिश्रित सामग्री के उपयोग को बढ़ावा दे रहा है जो बांस आधारित आवास की आदिवासी संस्कृति को संरक्षित करने की दिशा में एक और कदम है। बांस से सेनेटरी और बिजली के उत्पादों को बनाने और विकसित करने के लिए एक विज्ञान परियोजना तैयार की गई थी जिसका उद्देश्य प्लास्टिक और धातु को बांस से बदलना और कई पर्यावरण अनुकूल विकल्पों की खोज करना था। इस स्टार्टअप को अटल इनक्यूबेशन सेंटर द्वारा सराहना के साथ-साथ नवाचार हेतु अवसर मिला है। परियोजना के तहत बांस से बने विभिन्न प्रकार के बाथरूम और वॉशबेसिन के नल, ओवरहेड और हैंड-हेल्ड शॉवर, रसोई के नल और बिजली के सॉकेट और प्लग विकसित किए गए हैं। यह गतिविधि विशेष रूप से उत्तर-पूर्वी क्षेत्र में महिलाओं सहित गरीब और वंचित समूहों के बीच रोज़गार के अवसर पैदा करेगी जिससे सतत आजीविका के अवसर उपलब्ध होंगे। इसमें कोई संदेह नहीं है कि धीरे-धीरे बांस मिश्रित सामग्री की स्वीकार्यता बढ़ रही है।

प्लास्टिक और धातु के स्थान पर बांस से बने सेनेटरी और विद्युत उत्पादों का उपयोग

नेक्टर ने आदिवासी सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित करने के लिए बांस आधारित विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी परियोजनाओं के विकास और व्यावसायीकरण हेतु मदद की है। कुछ परियोजनाएं नीचे दी गई हैं:

- बंद प्लाईवुड इकाइयों को बांस प्लाई में परिवर्तित करना;
- जूट और प्लास्टिक के मिश्रण;
- विद्युत उत्पादन एवं तापीय अनुप्रयोगों के लिए बांस आधारित गैसीकरण;
- अपशिष्ट का उपयोग करने और ग्रामीण ईंधन आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए बांस आधारित चारकोल बनाना;
- कम वसा उच्च फाइबर आहार की आवश्यकता के लिए खाद्य बांस तना प्रसंस्करण;
- ग्रामीण क्षेत्रों के लिए बांस लुगदी आधारित स्वच्छता उत्पाद;
- उपलब्ध बांस प्रजातियों के अनुसार मशीनरी का विकास/अनुकूलन;
- अग्निरोधी का विकास;
- ग्रामीण और शहरी आवास, स्कूल, अस्पताल, मैदानी और ऊंचाई वाले क्षेत्रों में आपदा न्यूनीकरण के लिए भूकंपरोधी और आसानी से स्थापित होने वाली पूर्व-निर्मित और साथ ही स्थायी बांस-आधारित संरचनाएं।

बांस के नल के साथ प्रौद्योगिकी का सम्मिश्रण

परंपरागत रूप से, भारतीय आदिवासी समाज हस्तशिल्प से लेकर घरों के निर्माण तक कई चीज़ों के निर्माण के लिए बांस का उपयोग करते रहे हैं, और बांस आधारित जल सिंचाई प्रणाली और बांस के नल आदिवासी संस्कृति का हिस्सा रहे हैं। आज भी, कई पहाड़ी गाँव उच्च धाराओं से बांस के पाइपों के माध्यम से पानी लाते हैं।

बांस के नलों से संबंधित विज्ञान परियोजनाएं शुरू की गई हैं, जिसके लिए किसी बड़े औद्योगिक सेटअप की आवश्यकता नहीं होती है। इसे कुछ विशेष रूप से डिज़ाइन की गई मशीनरी और अच्छी तरह से प्रशिक्षित कारीगरों के उपयोग से बहुत छोटे सेटअप में आसानी से बनाया जा सकता है। पानी के प्रवाह और संबंधित कनेक्टिविटी को

पानी के प्रवाह और संबंधित कनेक्टिविटी को विनियमित करने के लिए विशेष रूप से अनुकूलित बांस के नल का उपयोग किया जाता है

विनियमित करने के लिए एक विशेष रूप से अनुकूलित नल कार्टेज का उपयोग किया जाता है। चूंकि बांस धातु के विपरीत गैर-संक्षारक है, इसलिए यह धातुओं की तुलना में अधिक समय तक काम कर सकता है। बांस के नल न केवल नल निर्माण में हानिकारक प्लास्टिक और महंगी धातु की जगह लेते हैं, बल्कि पारंपरिक बांस कारीगरों को भी इससे रोज़गार मिलता है जिससे देश के आदिवासी क्षेत्रों में भारी रोज़गार पैदा किया जा सकता है।

नेक्टर जनजातीय संस्कृति की रक्षा के लिए बांस उद्योग को व्यापक स्तर पर बढ़ावा दे रहा है। इसके लिए संस्थान द्वारा विपणन संपर्कों का सृजन, कौशल विकास प्रशिक्षण का आयोजन, संबंधित प्रसंस्करण इकाइयों को कच्चे माल की गुणवत्ता और सतत आपूर्ति के साथ ही बांस उत्पादकों और उद्योग के बीच अंतराल को पाटने के माध्यम से उद्यमियों को समर्थन दिया जा रहा है।

बांस जल टॉवर

बांस के पानी के टॉवर विभिन्न आदिवासी संस्कृतियों में पाए जाने वाले आकर्षक ढांचे हैं, खासकर उन क्षेत्रों में जहां बांस प्रचुर मात्रा में है। ये टॉवर जल संरक्षण और भंडारण की एक पारंपरिक विधि के रूप में काम करते हैं, जिन्हें अक्सर शुष्क मौसम या सूखे के दौरान सामुदायिक उपयोग के लिए वर्षा जल को इकट्ठा करने और बनाए रखने के लिए सरलता से डिज़ाइन किया जाता है।

बांस जल टॉवर को आधुनिक विज्ञान अनुप्रयोगों के साथ वर्षा, कोहरा, ओस आदि सहित वायुमंडल से जल एकत्र करने के लिए डिज़ाइन किया गया है, जो उन समुदायों के लिए वैकल्पिक जलस्रोत प्रदान करता है, जिन्हें पीने योग्य पानी तक पहुँचने में चुनौतियों का सामना करना पड़ता है।

चेरापूंजी को अक्सर दुनिया भर में सबसे ज़्यादा बारिश वाले स्थान के रूप में जाना जाता है, फिर भी सर्दियों के मौसम में, यह पानी की भारी कमी और अभाव से ग्रस्त है। 2011-2020 की अवधि के दौरान भारतीय मौसम विज्ञान विभाग के आंकड़ों के अनुसार, लगभग 157 औसत वर्षा-दिवसों में, क्षेत्र में वार्षिक औसत वर्षा लगभग 11856 मिमी थी। चेरापूंजी के रामकृष्ण मिशन स्कूल परिसर में बांस जल टॉवर पर एक परियोजना शुरू की गई है। बांस जल टॉवर को ग्रामीणों और स्थानीय समुदाय द्वारा स्वामित्व और संचालन के लिए डिज़ाइन किया गया है। परियोजना का लक्ष्य लोगों के प्रशिक्षण, निर्माण और विनिर्माण, निगरानी, जल प्रबंधन और रखरखाव, और कृषि में अनुप्रयोगों आदि के आधार पर स्थानीय अर्थव्यवस्था को सशक्त बनाना है ताकि समुदाय की विभिन्न जल आवश्यकताओं को पूरा किया जा सके।

कम लागत वाला जल उपचार संयंत्र

मणिपुर के लामसांग उपखंड के अंतर्गत आने वाले कामेंग और मकलंग गाँवों में पीने योग्य पानी की भारी कमी है। इन गाँवों में पानी की खराब गुणवत्ता एक महत्वपूर्ण मुद्दा है जिसका परिवारों के शारीरिक, मानसिक और आर्थिक स्वास्थ्य पर बहुत बुरा असर पड़ता है, जिससे गाँवों के अस्तित्व और समृद्धि पर खतरा मंडराता है।

एक अध्ययन ने दोनों गाँवों में आबादी और जल संसाधनों के बीच संबंधों का विश्लेषण किया। गाँवों में इस्तेमाल किया जाने वाला पानी बिना पर्याप्त उपचार के

बांस का वॉटर टॉवर : जल संरक्षण और स्टोरेज का परंपरागत तरीका

सीधे तालाबों से पंप किया जाता है या एकत्र किया जाता है और इसलिए स्रोत जल की गुणवत्ता गाँवों में पीने के पानी की गुणवत्ता निर्धारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। परीक्षण के माध्यम से पानी का गहन आकलन करने के बाद पाया गया कि पानी पशु एवं मानव मल और विभिन्न अशुद्धियों से दूषित था, जो भौतिक, जैविक और रासायनिक प्रकृति के हैं। इस तरह के खराब गुणवत्ता वाले पानी के उपयोग से जलजनित बीमारियां होती हैं और गाँवों में उनका प्रसार होता है। सामुदायिक स्वास्थ्य अध्ययनों में बताया गया है कि कामेंग और मकलंग दोनों गाँवों में लगभग 50% से 60% बीमारियाँ पीने के पानी की खराब गुणवत्ता के कारण होती हैं। यह भी पाया गया है कि खराब पानी के खराब उपचार और ग्रामीण क्षेत्रों में पुरानी सफाई व्यवस्था के अभ्यास की वजह से दोनों गाँवों में पीने के पानी की गुणवत्ता और मात्रा बहुत कम है।

नेक्टर द्वारा समर्थित एक परियोजना के तहत, दोनों गाँवों के लिए रफिंग और बायो सैंड फिल्टर पर आधारित एक कम लागत वाला जल उपचार संयंत्र डिज़ाइन और निर्मित किया गया। परियोजना का उद्देश्य कम से कम प्रारंभिक लागत के साथ यथासंभव व्यापक रूप से सुरक्षित और स्वस्थ जल की आपूर्ति और वितरण सुनिश्चित करना है और एक ऐसी प्रणाली का निर्माण करना है जिसमें स्थायी आधार पर न्यूनतम रखरखाव की आवश्यकता होती है। उपचार संयंत्र को इस तरह से डिज़ाइन किया गया है कि उपलब्ध तालाब के पानी को कम लागत और आसानी से उपलब्ध सामग्री के साथ स्वदेशी तकनीक (रफिंग फिल्टर और स्लो सैंड फिल्टर का संयोजन) का उपयोग करके उपचारित किया जाता है।

कौशल विकास एवं रोज़गार सृजन

नेक्टर डिलीट ग्रामीण जनता के कौशल विकास के बांस आधारित आदिवासी संस्कृति को समृद्ध करने में प्रमुख भूमिका निभा रहा है। इसके लिए कार्यक्रम भी शुरू किए हैं ताकि आदिवासी आत्मनिर्भर बन सकें सतत आजीविका प्राप्त कर सकें। विभिन्न गतिविधियों, विशेषकर निर्माण और चटाई बनाने में प्रति वर्ष 30 मिलियन मानव दिवस सृजित किए गए हैं।

विज्ञान परियोजनाओं के साथ कौशल विकास और रोज़गार सृजन

इसकी गतिविधियों द्वारा बांस उगाने वाले क्षेत्रों में बांस आधारित आजीविका उत्पन्न की गई है। निरंतर और लागत प्रभावी कच्चे माल की आपूर्ति सुनिश्चित करने के लिए, गाँवों और सामुदायिक स्थानों पर बांस की छड़ियों के निर्माण के लिए प्रोत्साहन दिया जाता है और कौशल विकास प्रशिक्षण सहित प्राथमिक प्रसंस्करण मशीनरी उपलब्ध करायी जाती है। चटाई बुनाई, प्राकृतिक रंगों के उपयोग, बांस की टहनियों के प्रसंस्करण, अगरबत्ती की छड़ियों को बनाने और धूपबत्ती निर्माण के क्षेत्रों में कौशल उन्नयन प्रशिक्षण भी प्रदान किया जाता है।

हालांकि ये प्रयास विज्ञान परियोजनाओं के माध्यम से आदिवासी संस्कृति को संरक्षित करने के लिए सरकार की प्रतिबद्धता को दर्शाते हैं, फिर भी अभी बहुत काम किया जाना बाकी है। यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि ये पहल सहभागी, समुदाय-संचालित और आदिवासी अधिकारों और स्वायत्तता का सम्मान करने वाली हों। सरकारी एजेंसियों, आदिवासी समुदायों, शोधकर्ताओं और नागरिक समाज संगठनों के बीच सहयोग को बढ़ावा देकर हम सांस्कृतिक संरक्षण के लिए अधिक समावेशी और टिकाऊ दृष्टिकोण बना सकते हैं जो भारतीयों की विरासत का सम्मान करता हो।

पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय के प्रयास

भारत में पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय द्वारा पर्यावरण संरक्षण और सतत विकास को बढ़ावा देते हुए आदिवासी समुदायों को सशक्त बनाने के उद्देश्य से विभिन्न विज्ञान परियोजनाएं लागू की गई हैं। मंत्रालय पारंपरिक पारिस्थितिकीय ज्ञान को आधुनिक वैज्ञानिक प्रथाओं के साथ एकीकृत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। नेशनल मिशन फॉर ग्रीन इंडिया जैसी पहलों के माध्यम से, मंत्रालय आदिवासी क्षेत्रों में वनीकरण कार्यक्रमों, जैव विविधता संरक्षण और सतत संसाधन प्रबंधन का समर्थन करता है। ये परियोजनाएं न केवल पर्यावरण की रक्षा करती हैं बल्कि आदिवासी समुदायों के सांस्कृतिक परिदृश्य और आजीविका की भी रक्षा करती हैं।

पारंपरिक पारिस्थितिकीय ज्ञान प्रलेखन वैज्ञानिक इनपुट के साथ आदिवासी संस्कृति को संरक्षित करने की एक शानदार योजना है। आदिवासी समुदायों द्वारा रखे गए पारंपरिक पारिस्थितिकीय ज्ञान (TEK) के मूल्य को पहचानते हुए, इस योजना के तहत परियोजनाओं का उद्देश्य स्वदेशी

ज्ञान प्रणालियों का दस्तावेज़ीकरण, संरक्षण और उपयोग करना है। इन परियोजनाओं में जैव विविधता संरक्षण, प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन और जलवायु के लचीलेपन से संबंधित पारंपरिक प्रथाओं को सूचीबद्ध करने के लिए आदिवासी बुजुर्गों, शोधकर्ताओं और स्थानीय संस्थानों के बीच सहयोग शामिल है। 'टीईके' को आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोणों के साथ एकीकृत करके, ये पहल पर्यावरणीय चुनौतियों के लिए समग्र और संदर्भ-विशिष्ट समाधानों को बढ़ावा देती है। आदिवासी संस्कृति की रक्षा के लिए पारंपरिक पारिस्थितिकीय ज्ञान को उजागर करने वाला "नागालैंड इज़ चेन्जिंग" नामक एक वृत्तचित्र जनता के अवलोकन के लिए उपलब्ध है और इसे इंटरनेट/यूट्यूब पर देखा जा सकता है।

जैव विविधता संरक्षण और सतत आजीविका कार्यक्रम उन परियोजनाओं हेतु मदद करता है जो आदिवासी समुदायों के लिए जैव विविधता संरक्षण को सतत आजीविका विकल्पों के साथ एकीकृत करती हैं। इन परियोजनाओं में वन पारिस्थितिकी तंत्र की बहाली और प्रबंधन, गैर-लकड़ी वन उपज (एनटीएफपी) आधारित उद्यमों को बढ़ावा देना और पारिस्थितिकी पर्यटन पहल शामिल हैं। आय के वैकल्पिक स्रोत प्रदान करके ये परियोजनाएं पर्यावरण संरक्षण प्रयासों को बढ़ाते हुए वन संसाधनों पर निर्भरता को कम करती हैं।

समुदाय-आधारित वन प्रबंधन कार्यक्रम को संयुक्त वन प्रबंधन (जेएफएम) जैसी परियोजनाओं के माध्यम से क्रियान्वित किया जा रहा है, जहां स्थानीय आदिवासी समुदायों को शामिल करते हुए भागीदारीपूर्ण वन प्रबंधन प्रथाओं को प्रोत्साहित किया जा रहा है। ये परियोजनाएं आदिवासी समूहों को वन संरक्षण, वनीकरण और पुनर्जनन गतिविधियों में सक्रिय भूमिका निभाने के लिए सशक्त बनाती हैं। स्वामित्व और प्रबंधन की भावना को बढ़ावा देकर, जेएफएम पहल पारिस्थितिकी बहाली और सामुदायिक विकास दोनों में योगदान देती है।

जलवायु परिवर्तन अनुकूलन और शमन विज्ञान परियोजनाएँ आदिवासी समुदायों की ज़रूरतों के अनुरूप जलवायु परिवर्तन अनुकूलन और शमन रणनीतियों पर केंद्रित हैं। इन परियोजनाओं में जलवायु अनुकूल कृषि पद्धतियों, नवीकरणीय ऊर्जा प्रौद्योगिकियों और समुदाय-आधारित आपदा जोखिम न्यूनीकरण उपायों को बढ़ावा देना शामिल है। आदिवासी समुदायों की अनुकूलन क्षमता को बढ़ाकर, ये पहल जलवायु परिवर्तन के गरीब लोगों पर पड़ने वाले प्रतिकूल प्रभावों को कम करने में मदद करती हैं।

क्षमता निर्माण कार्यक्रम और जागरूकता अभियान जनजातीय समुदायों को पर्यावरण विज्ञान के मुद्दों और संरक्षण प्रथाओं के बारे में उनकी समझ बढ़ाता है। इन

नेक्टर द्वारा बांस के फर्नीचर हेतु सहायता दी जाती है

पहलों के तहत टिकाऊ भूमि उपयोग प्रथाओं, अपशिष्ट प्रबंधन तकनीकों, जैव विविधता संरक्षण और अन्य प्रासंगिक विषयों पर प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है। जनजातीय युवाओं और सामुदायिक नेतृत्वकर्ताओं को वैज्ञानिक ज्ञान और कौशल से सशक्त बनाकर ये परियोजनाएं पर्यावरण संरक्षण को बढ़ावा देती हैं और टिकाऊ विकास के लिए स्थानीय कार्रवाई को प्रोत्साहित करती हैं।

विज्ञान परियोजनाओं के माध्यम से भारत में आदिवासी संस्कृति को संरक्षित करने में बहुआयामी दृष्टिकोण शामिल है जो पारंपरिक ज्ञान को डिजिटल दस्तावेज़ीकरण, भाषा संरक्षण ऐप, सांस्कृतिक मानचित्रण, आभासी वास्तविकता (वीआर) और संवर्धित वास्तविकता (एआर), पारंपरिक ज्ञान भंडार, सामुदायिक रेडियो और पॉडकास्ट, जैव-सांस्कृतिक संरक्षण, शिक्षा और प्रशिक्षण और सहयोगी अनुसंधान जैसे आधुनिक उपकरणों के साथ जोड़ता है। विज्ञान, प्रौद्योगिकी और स्वदेशी ज्ञान प्रणालियों की शक्ति के सम्मिलन से भारत में आदिवासी संस्कृतियों को उनकी स्वायत्तता और विरासत का सम्मान करते हुए बनाए रखना और पुनर्जीवित करना संभव है।

कुल मिलाकर, विभिन्न विज्ञान परियोजनाओं ने वैज्ञानिक अनुसंधान और क्षमता निर्माण के साथ आदिवासी समुदायों के पारंपरिक ज्ञान की क्षमता का दोहन करके आदिवासी संस्कृति को संरक्षित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, जिससे पूर्वोत्तर भारत के सामाजिक-आर्थिक विकास और पर्यावरण संरक्षण में योगदान मिला है। भारत में आदिवासियों के लिए विज्ञान परियोजनाओं का उद्देश्य जैव विविधता संरक्षण और सामुदायिक कल्याण के बीच सहजीवी संबंध के साथ आदिवासी संस्कृति की रक्षा और संरक्षण करना है। वैज्ञानिक विशेषज्ञता, पारंपरिक ज्ञान और सहभागितापूर्ण दृष्टिकोण का लाभ उठाकर, ये पहल पारिस्थितिकीय अनुकूलन और सामाजिक समानता को बढ़ावा देते हुए आदिवासी संस्कृति के संरक्षण में योगदान देती है। ❑

थेय्यम - जनजातीय सांस्कृतिक नृत्य

-गौरी एस

देश में हज़ारों साल से मौजूद प्राचीन जनजातीय लोकनृत्य सामाजिक जीवन को संचालित करने वाले हर उपक्रम की प्रमाणिक अभिव्यक्ति हैं। यह मनोरंजन के जीवंत माध्यम होने के साथ सांस्कृतिक परंपराओं, पर्यावरण के साथ मानवीय सामंजस्य और सामाजिक कुरीतियों पर प्रहार का सार्थक माध्यम रही हैं। केरल और कर्नाटक के बड़े भूभाग में लोकप्रिय थेय्यम लोकनृत्य आधुनिक परिवेश में भी सामुदायिक चेतना के उद्देश्यों को स्वयं में समाहित किए हुए है। यह ग्रामीण जनजीवन को जीवंत बनाए रखने के साथ समावेशी पर्यटन में लोकनृत्यों की प्रासंगिकता को व्यक्त करता है।

थेय्यम उत्तरी केरल की भगवान की सबसे असाधारण पूजा है। थेय्यम शब्द अपने आप में दैवम से लिया गया है, जिसका अर्थ है भगवान। थेय्यम जैसा कि सदियों से अभ्यास किया जाता रहा है, लोगों की आस्था के मूर्त रूप के संदर्भ में समझा जा सकता है। यह सबसे सुंदर एशियाई अनुष्ठान कला है जो सुई की सटीकता के साथ चेहरे की पेंटिंग की कला को प्रभावी गतिशीलता (तांडव) के साथ नृत्य के साथ-साथ विविध वाद्ययंत्रों की मधुरता में मंत्रमुग्ध करने वाले प्रदर्शन के साथ संबद्ध होती है। संक्षेप में, इसे अतीत को जागृत करने वाली धुनों और संगीत से युक्त झिलमिलाते पारलौकिक आभूषणों का प्रवाह कहा जा सकता है।" -आरसी करिपथ, थेय्यप्रपंचम (द वर्ल्ड ऑफ थेय्यम)

थेय्यम को कालियाट्टम, थेयमकेट्टु या थिरायडियानथिरम के नाम से भी जाना जाता है। यह केरल के उत्तरी भाग, विशेष रूप से कोलाथुनाडु क्षेत्र की एक जीवंत अनुष्ठानिक कला है। इसमें वर्तमान समय में कासरगोड, कन्नूर, वायनाड और कोझिकोड ज़िले शामिल हैं। यह कला कर्नाटक के पड़ोसी क्षेत्र में 'भूटा कोला' नाम से भी प्रचलित है, जो ऐतिहासिक रूप से तुलुनाडु क्षेत्र तक विस्तारित है। एक सहस्राब्दी पुरानी प्राचीन परंपराओं में निहित, थेय्यम इन क्षेत्रों की सांस्कृतिक विरासत में एक प्रमुख स्थान रखता है। यह स्थानीय ग्रामीण समुदायों के सामाजिक-आर्थिक और धार्मिक ताने-बाने के साथ गहराई से जुड़ा हुआ है। केरल सरकार ने 2018-19 में थेय्यम कला अकादमी की स्थापना

लेखिका दिल्ली विश्वविद्यालय में राजनीति विज्ञान विभाग में रिसर्च स्कॉलर हैं। ई-मेल : s.gowri95@gmail.com

की घोषणा की, जिसे राष्ट्रीय मूर्त और अमूर्त सांस्कृतिक विरासत केंद्र के रूप में भी जाना जाता है। इसका उद्देश्य कलात्मक और ऐतिहासिक रुचि की वस्तुओं, स्मारकों, स्थानों को संरक्षित और पुनर्जीवित करना है।

समाज के निचले तबके के आदिवासी समुदायों द्वारा मुख्य रूप से प्रचलित थेय्यम मनोरंजन से आगे बढ़कर आध्यात्मिक अभिव्यक्ति और सामुदायिक एकता का माध्यम है। इसमें कुछ में मलयार समुदाय सम्मिलित है, जिसकी जीवनशैली वनों पर केंद्रित रही है। मलयार उत्तर में कासरगोड से दक्षिण में वडकारा तक रहते हैं। दूसरे, कन्नूर और कासरगोड ज़िलों के पहाड़ी इलाकों के माविलनमार समुदाय, जो पारंपरिक नृत्य के अलावा टोकरी बुनने का काम भी करते हैं। कासरगोड में कोप्पलार समुदाय अपनी थुलुनाड संस्कृति को बरकरार रखता है और थुलु भाषा में 'नालकेडयार' के नाम से जाना जाता है जिसका अर्थ नृत्य है। सुपारी के ताड़ से बने उत्पादों का उपयोग थेय्यम के परिधानों और आभूषणों में किया जाता है जिसे समुदाय तैयार करता है। माना जाता है कि कलनाडिकल एक मातृसत्तात्मक आदिवासी समाज है जो वायनाड की पहाड़ियों में आकर बस गया।

कलाकार, जिन्हें थेय्यम कलाकार के रूप में जाना जाता है, अक्सर देवताओं, आत्माओं या पैतृक नायकों का वेश धारण करते हुए, विस्तृत अनुष्ठानों और परिवर्तनों से गुजरते हैं। जटिल वेशभूषा, ज्वलंत शृंगार और उन्मादी नृत्य आंदोलनों के माध्यम से, थेय्यम कलाकार सांसारिक और दिव्य क्षेत्रों के बीच की खाई को पाटते हुए, दिव्यता का अवतार लेते हैं। इसके अलावा, थेय्यम ग्रामीण समाज के लोकाचार और मूल्यों के बारे में गहन अंतर्दृष्टि प्रदान करता है। यह इन कृषि समुदायों में प्रचलित गहरी जड़ें जमाए हुए विश्वासों, रीति-रिवाज़ों और सांप्रदायिक एकजुटता को दर्शाता है। थेय्यम का अध्ययन करके, ग्रामीण केरल में प्रचलित जातिगत गतिशीलता, लिंग भूमिकाओं और मनुष्यों एवं प्रकृति के बीच सहजीवी संबंधों की जटिलताओं को उजागर किया जा सकता है।

थेय्यम प्रदर्शन के संरचनात्मक घटकों में इसकी समृद्ध सांस्कृतिक अभिव्यक्ति के अभिन्न अंग शामिल हैं जो सामूहिक रूप से अनुष्ठानिक नृत्य के गहन और आकर्षक अनुभव में योगदान करते हैं, तथा सांस्कृतिक समृद्धि और आध्यात्मिक महत्व को प्रदर्शित करते हैं।

थोट्टम पाटू : प्रदर्शन के शुरुआती चरण को वेल्लट्टम या थोट्टम के रूप में जाना जाता है। इसमें कलाकार एक साधारण और मामूली लाल हेडड्रेस में ढोल बजाने वालों के साथ, मंदिर या थेय्यम के देवता की मिथक को पढ़ता है। इस चरण में मंच तैयार किया जाता है, जो बाद के चरणों

कलाकारों द्वारा किया गया प्राकृतिक मेकअप, पोशाक और पारंपरिक वाद्ययंत्र

में होने वाले विस्तृत परिवर्तन और इमर्सिव कहानी कहने के लिए आधार तैयार बनता है।

कावु : यह पवित्र उपवन या वन क्षेत्र है जहाँ पारंपरिक रूप से थेय्यम प्रदर्शन होते हैं। परंपरा में निहित, ये प्राकृतिक अभयारण्य जैव विविधता के महत्वपूर्ण भंडार के रूप में कार्य करते हैं, स्थानिक वनस्पतियों और जीवों को संरक्षित करते हैं और सांस्कृतिक रूप से, ये ऐसे अभयारण्य हैं जो सांप्रदायिक सामंजस्य और भूमि से आध्यात्मिक संबंधों को बढ़ावा देते हैं। इस प्रकार, कावु न केवल सांस्कृतिक विरासत की रक्षा करता है बल्कि ग्रामीण समुदायों और उनके प्राकृतिक परिवेश के बीच सामंजस्यपूर्ण संबंधों को मूर्त रूप देते हुए पारिस्थितिकीय संतुलन को भी बनाए रखता है।

फसल का प्रतीक : थेय्यम प्रदर्शन के लिए समय पारंपरिक कैलेंडर के अनुसार विशिष्ट शुभ अवधि के दौरान निर्धारित किया जाता है, जो अक्सर महत्वपूर्ण त्यौहारों या खगोलीय संरेखण के साथ मेल खाता है। इसके अलावा, थेय्यम प्रदर्शन आमतौर पर सर्दियों के महीनों के दौरान आयोजित किए जाते हैं, जो कृषि की शांति के साथ संरेखित होते हैं जब ग्रामीण अपनी खेती की गतिविधियों को बाधित किए बिना सक्रिय रूप से भाग ले सकते हैं। थेय्यम भी उन कुछ रीति-रिवाजों में से एक है जिसमें चावल के दाने दक्षिणा के हिस्से के रूप में चढ़ाए जाते हैं, जो देवी माँ के आशीर्वाद का प्रतीक है।

थेय्यम की जाति आधारित प्रकृति : थेय्यम प्रदर्शन अक्सर विशिष्ट जातियों से जुड़े होते हैं। खासतौर पर समाज के निचले तबके से संबंधित जातियों से संबंधित होते हैं। प्रत्येक जाति केवल अपने देवता के विशिष्ट थेय्यम का प्रदर्शन कर सकती है और इस प्रकार पीढ़ी-दर-पीढ़ी परंपरा को संरक्षित करने और प्रसारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

प्राकृतिक श्रृंगार, पोशाक और पारंपरिक वाद्ययंत्र: थेय्यम के सबसे खास पहलुओं में से एक है कलाकारों द्वारा पहना जाने वाला विस्तृत श्रृंगार और रंगबिरंगा परिधान। चावल के पाउडर और हल्दी जैसी प्राकृतिक सामग्रियों से बना यह श्रृंगार कलाकारों को दैवीय या पैतृक प्राणियों में बदल देता है। इस परिधान में नारियल के पत्तों और अन्य प्राकृतिक सामग्रियों से बने जटिल डिज़ाइन और आभूषणों से सजी रंगबिरंगी पोशाकें शामिल हैं। इसके अतिरिक्त, पारंपरिक संगीत वाद्ययंत्र जैसे कि चेंडा (ड्रम) और इलाथलम (झांझ) प्रदर्शन के साथ ताल प्रदान करते हैं और समग्र माहौल को बढ़ाते हैं।

थेय्यम के विभिन्न प्रकार : थेय्यम के लगभग 400 विविध रूप हैं, जिनमें असंख्य देवी-देवता और कथाएं शामिल हैं, जिनमें से प्रत्येक सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और पौराणिक महत्व के एक अद्वितीय पहलू का प्रतिनिधित्व करता है। उन्हें मोटे तौर पर देवी रूपों में वर्गीकृत किया जा सकता है। यह मुख्य रूप से भगवती, काली, चामुंडी और भद्रकाली जैसी मातृ देवी के पूजन पर आधारित है जो प्रकृति और पौराणिक कथाओं के दोनों आदिम पहलुओं को मूर्त रूप देती है। इसके अतिरिक्त, मानव आकृतियों और

थेय्यम का प्रदर्शन

भूमि के इतिहास से ऊपर उठाए गए देवता हैं, इनमें श्रद्धेय विद्वान और युद्ध नायक शामिल हैं, इस प्रकार इतिहास का दस्तावेज़ीकरण करने की परंपरा विकसित हुई है। एक अन्य श्रेणी में देशी और आदिवासी संस्कृतियों के आंकड़े शामिल हैं, जैसे कि नाग देवता तथा देवी और वे श्राप और आशीर्वाद से जुड़े हैं। इसके अलावा, थेय्यम के पशु रूप, जैसे कि बाघ और बंदर देवता, प्रकृति के साथ समुदाय के जटिल संबंधों को व्यक्त करते हैं। ये विविध रूप सामूहिक रूप से केरल के ग्रामीण सांस्कृतिक परिदृश्य में प्रचलित विश्वासों, इतिहास और सामाजिक गतिशीलता के समृद्ध ताने-बाने को दर्शाते हैं।

थेय्यम ग्रामीण जीवन के ऐतिहासिक, राजनीतिक और सामाजिक आयामों को देखने के लिए एक सूक्ष्म दृष्टि के रूप में कार्य करता है। यह अपनी उत्पत्ति के साथ एक सहस्त्राब्दी तक फैले हुए, थेय्यम समुदायों की सामूहिक स्मृति का प्रतीक है। इससे क्षेत्र के अतीत और वर्तमान में अमूल्य अंतर्दृष्टि प्राप्त होती है। ऐतिहासिक रूप से अपने मूल में, थेय्यम एक जीवंत संग्रह है, जिसमें मौखिक परंपराओं, मिथकों और किंवदंतियों के माध्यम से इतिहास को संकलित करने की एक प्रक्रिया है। जटिल अनुष्ठानों और प्रदर्शनों के माध्यम से, थेय्यम कथाएं प्राचीन प्रवास, संघर्ष और सामाजिक परिवर्तनों की कहानियों को याद करती हैं। यह ऐतिहासिक घटनाओं को संरक्षित करती हैं जो अन्यथा समय की मार से बच नहीं पातीं। वे खानाबदोश समय से लेकर स्थिर कृषि और राज्य प्रणाली के विकास तक समाज के विकास को याद करते हैं। ये कथाएँ क्षेत्र के इतिहास और संस्कृति को प्रतिबिंबित करने और शिक्षित करने के लिए आध्यात्मिकता से परे हैं।

थेय्यम सामाजिक कुरीतियों और उसके समाधान के प्रति जनजागरण का भी एक महत्वपूर्ण मंच है। थेय्यम के कई प्रदर्शनों में ऐसी कहानियां शामिल होती हैं जो प्रचलित मानदंडों और सत्ता संरचनाओं को चुनौती देती हैं, जाति आधारित अत्याचारों से लेकर लैंगिक भेदभाव तक सामाजिक अन्याय और असमानताओं पर प्रकाश डालती हैं। थेय्यम समाज के लिए एक दर्पण के रूप में कार्य करता है, जो जाति, लिंग और सत्ता गतिशीलता के मुद्दों पर चिंतन और संवाद को प्रेरित करता है। यहाँ जन-भागीदारी थेय्यम के सार का अभिन्न अंग बन जाती है, जो इसे एकमात्र तमाशे से सामुदायिक अनुभव में बदल देती है। हर समुदाय और परंपरा को न केवल प्रतिनिधित्व मिलता है, बल्कि अपनी आवाज़ उठाने के लिए एक स्थान भी मिलता है। थेय्यम के प्रदर्शन में सामुदायिक भागीदारी इसे सामाजिक सामंजस्य और एकजुटता के एक स्थान के रूप में परिवर्तित करती है। पवित्र उपवनों और गाँव के आँगन में जहाँ प्रदर्शन होते हैं, समुदाय एक साथ आते हैं और अपनेपन और परस्पर जुड़ाव की भावना को बढ़ावा देते हैं, जिससे ग्रामीण समाजों को जोड़ने वाले बंधन मज़बूत होते हैं।

थेय्यम प्रतिरोध और सांस्कृतिक पहचान के दावे के स्थल के रूप में महत्व रखता है। अपने आख्यानों और प्रदर्शनों के माध्यम से, थेय्यम जाति और पितृसत्ता की अन्यायपूर्ण व्यवस्था द्वारा थोपे गए प्रमुख आख्यानों को चुनौती देता है। इससे हाशिये पर पड़े समुदायों को अभिव्यक्ति का एक मंच भी मिलता है। इस प्रकार थेय्यम लोकतांत्रिक प्रणालियों के ज़रिए राजनीतिक चेतना विकसित करने के स्थल के रूप में कार्य करता है, जहां समुदाय आम चिंताओं को संबोधित करने और अपने अधिकारों और निवारण की वकालत करने के लिए एक साथ आते हैं। अपने रोज़मर्रा के जनजीवन के साथ समुदाय की आवश्यकताओं तथा मुद्दों को इस लोकनृत्य में विषय-वस्तु के रूप में सम्मिलित किया जाता है। चाहे प्रतीकात्मक इशारों के माध्यम से या प्रकट बयानों के माध्यम से थेय्यम प्रदर्शन अक्सर ग्रामीण समुदायों की आकांक्षाओं और शिकायतों को दर्शाते हैं। इस तरह यह समाज के अंतिम पायदान पर खड़े लोगों की आवाज़ को प्रोत्साहन प्रदान करता है। थेय्यम के माध्यम से अपनी सांस्कृतिक विरासत पर जोर देकर, ग्रामीण समुदाय आत्मनिर्णय और मान्यता के अपने अधिकार पर ज़ोर देते हैं। इसके अलावा, थेय्यम और इसका प्रदर्शन क्षेत्र की छोटी और बड़ी परंपराओं को एक साथ लाता है, जिससे संस्कृतियों और समुदायों का समावेश देखा जा सकता है। ऐतिहासिक शख्सियतों और युद्ध नायकों के अलावा, पौराणिक देवताओं के साथ कुट्टीचटन जैसे क्षेत्रों के छोटे वार्डनों का सह-अस्तित्व क्षेत्र और इसकी संस्कृतियों के बीच जटिलताओं, विविधताओं और जुड़ाव को उजागर करता है।

थेय्यम आदिवासी ज्ञान, जीवनशैली और पारिस्थितिकी को समझने की दिशा में एक आकर्षक मंच के रूप में कार्य करता है। यह स्थानीय समुदायों और उनके प्राकृतिक परिवेश के बीच सहजीवी संबंधों में गहन अंतर्दृष्टि प्रदान करता है। अनुष्ठान प्रदर्शनों में अंतर्निहित, थेय्यम आदिवासी समाजों के पर्यावरण के साथ गहरे जड़ वाले पारिस्थितिकीय ज्ञान और आध्यात्मिक संबंध को दर्शाता है।

पारिस्थितिकीय प्रतीकवाद : कई थेय्यम प्रदर्शनों में देवताओं और आत्माओं को दिखाया जाता है जो प्रकृति के तत्वों, जैसे जंगलों, नदियों, जानवरों और आकाशीय पिंडों से निकटता से जुड़े होते हैं। इन आख्यानों में टिकाऊ

भूमि प्रबंधन प्रथाओं, मौसमी कैलेंडर और स्वदेशी लोगों द्वारा प्रकृति के साथ सद्भाव में अपने प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग करने के लिए इस्तेमाल किए जाने वाले पारिस्थितिकीय संकेतकों की अंतर्दृष्टि शामिल है, इस प्रकार विकास और अर्थव्यवस्था के प्रति एक स्थायी परिप्रेक्ष्य को बढ़ावा मिलता है।

पवित्र उपवन और जैव विविधता संरक्षण : थेय्यम अनुष्ठान अक्सर उन पवित्र उपवनों में किए जाते हैं, जिन्हें स्वदेशी समुदायों द्वारा पवित्र स्थल के रूप में पूजा जाता है। ये उपवन जैव विविधता के हॉटस्पॉट के रूप में काम करते हैं, जहाँ पौधों और जानवरों की प्रजातियों की एक समृद्ध विविधता पाई जाती है। इन प्राकृतिक स्थानों पर थेय्यम का प्रदर्शन करके आदिवासी समुदाय भूमि के साथ अपने आध्यात्मिक संबंध को मजबूत करते हैं। यह स्थानीय पारिस्थितिकी तंत्र के संरक्षण में भी योगदान देते हैं।

फसल उत्सव और कृषि संबंधी ज्ञान : कुछ थेय्यम अनुष्ठान फसल उत्सव और कृषि उत्सवों से जुड़े हैं, जो आदिवासी समाजों में कृषि के महत्व पर प्रकाश डालते हैं। गीतों, नृत्यों और अनुष्ठानों के माध्यम से, थेय्यम कलाकार भूमि, देवताओं और पैतृक आत्माओं को श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं, भरपूर फसल और कृषि समृद्धि के लिए आशीर्वाद देते हैं। ये प्रदर्शन कृषि ज्ञान और प्रथाओं के भंडार के रूप में काम करते हैं जिन्होंने सदियों से आदिवासी समुदायों को कायम रखा है।

पर्यावरण संरक्षण और वकालत : हाल के वर्षों में थेय्यम पर्यावरण संरक्षण और वकालत के लिए एक मंच के रूप में उभरा है, जिसमें कुछ प्रदर्शनों में पारिस्थितिकीय संरक्षण, वन्यजीव संरक्षण और जलवायु परिवर्तन जागरूकता से संबंधित विषय शामिल हैं। आदिवासी समुदाय पर्यावरणीय चेतना बढ़ाने के माध्यम के रूप में थेय्यम का उपयोग करके सामुदायिक जागरूकता फैलाने के साथ प्राकृतिक संसाधनों के स्थायी प्रबंधन को बढ़ावा देना चाहते हैं।

थेय्यम का समकालीन महत्व इसकी पारंपरिक जड़ों से कहीं आगे तक फैला हुआ है, जिसमें सांस्कृतिक, आर्थिक और सामाजिक आयामों की विविधता शामिल है जो क्षेत्रीय, राज्य और यहां तक कि अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी गूंजती है। इसका समकालीन महत्व बहुआयामी योगदान और स्थानीय तथा वैश्विक दोनों स्तरों पर प्रासंगिकता के साथ एक गतिशील और स्थायी सांस्कृतिक घटना के रूप में इसकी स्थिति में निहित है।

थेय्यम का स्थायी सांस्कृतिक महत्व व्यापक दर्शकों के लिए अद्वितीय कलात्मक परंपराओं और लोककथाओं का प्रतिनिधित्व करता है। थेय्यम की जड़ें पवित्र उपवनों से अंतर्संबंधित पाई गई हैं। यह समकालीन प्रदर्शन थिएटरों, सभागारों और सांस्कृतिक उत्सवों सहित अधिक औपचारिक चरणों और स्थानों में परिवर्तित हो गए हैं और यहां तक कि विभिन्न फिल्म उद्योगों में भी प्रतिनिधित्व पाया है। राष्ट्रीय स्तर पर, थेय्यम केरल की सांस्कृतिक विरासत का एक गौरवपूर्ण प्रतीक बन गया, जो राज्य की गहरी जड़ें जमा चुकी लोक परंपराओं का प्रतिनिधित्व करता है। 1960 में गणतंत्र दिवस समारोह और 1982 में नौवें एशियाई खेलों के उद्घाटन समारोह जैसे महत्वपूर्ण आयोजनों में इसकी उपस्थिति राष्ट्रीय मंच पर इसके महत्व को रेखांकित करती है। अंतर्राष्ट्रीय मंच पर 1985 में पेरिस में भारत वर्ष उत्सव के दौरान, थेय्यम अपनी क्षेत्रीय पहचान से आगे निकल गया और भारत की समृद्ध लोक संस्कृति का वैश्विक प्रतीक बन चुका है। इस तरह के आयोजनों में भाग लेकर, थेय्यम ने विश्व मंच पर भारत की सांस्कृतिक विविधता को बढ़ावा देने और मान्यता देने, इसकी पारंपरिक कला और ग्रामीण जीवन की अधिक सराहना और समझ को बढ़ावा देने में योगदान दिया।

थेय्यम स्थानीय अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण योगदान देता है। यह समुदायों के लिए राजस्व उत्पन्न का माध्यम रहा है। थेय्यम के कार्यक्रमों में भाग लेने वाले पर्यटकों की आमद ग्रामीण क्षेत्रों में आर्थिक गतिविधि को बढ़ावा देती है, जिससे आतिथ्य, परिवहन, हस्तशिल्प और अन्य संबंधित उद्योगों को लाभ होता है। इसके अलावा, यह अनुष्ठान कला क्षेत्र की एक महत्वपूर्ण आबादी के लिए आजीविका के अवसर प्रदान करती है जिसमें कलाकार, संगीतकार, पोशाक निर्माता और कारीगर शामिल हैं। इस तरह यह समावेशी पर्यटन का प्रतीक बनकर उभरा है। पारंपरिक व्यवसायों और कौशल को बनाए रखते हुए, थेय्यम स्थानीय समुदायों की आर्थिक भलाई में योगदान देता है और सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित करने में मदद करता है। अंत में, थेय्यम ने दुनिया भर के विद्वानों, शोधकर्ताओं और सांस्कृतिक उत्साही लोगों का ध्यान आकर्षित किया है, जिससे इसके इतिहास, प्रतीकवाद और सामाजिक-सांस्कृतिक महत्व पर अंतःविषय अध्ययन और शोध को बढ़ावा मिला है। इस तरह की अकादमिक जांच सांस्कृतिक परिदृश्य और इससे जुड़े आदिवासी और पारिस्थितिकी ज्ञान को आकार देने में थेय्यम की भूमिका की गहरी समझ में योगदान देती है, जिसका वैश्विक सांस्कृतिक विरासत पर व्यापक प्रभाव पड़ता है। इस प्राचीन अनुष्ठानिक नृत्य रूप का ग्रामीण जीवन, संस्कृति, इतिहास, पारिस्थितिकी और अर्थव्यवस्था पर ज्ञान के भंडार के रूप में एक स्थायी महत्व है। ❑

सांस्कृतिक समरसता के संरक्षण में आदिवासी कला का योगदान

-अमरेंद्र किशोर

प्रत्येक रचना की अपनी व्याख्या होती है, चाहे वह उत्तर-पूर्वी राज्यों से हो या गुजरात के काठियावाड़ से, आदिवासी भारत के विभिन्न और बहुमुखी समुदायों द्वारा संजोए गए अद्वितीय विश्वासों के प्रतिबिंब के रूप में हमें आकर्षित करते हैं। आदिवासी लोग अपनी प्राचीन संस्कृति को जीवित रखने के लिए कड़ी मेहनत करते हैं, जिस संस्कृति में है प्रकृति का संगीत, सामुदायिक परंपराएं, अनुष्ठान और कला, जिनका सीधा नाता आसपास के परिवेश से है, कुदरती अवयवों से है। प्रकृति ने, उसके संसाधनों ने अपनी तरह उन आदिवासियों को सोचना, समझना और रहना सिखाया है जो आदिवासी अपने पर्यावरण की देखभाल करते हैं और अपने पुश्तैनी संसाधनों का बुद्धिमानी से उपयोग करके सम्पूर्ण प्रकृति के साथ सद्भाव रखते हैं।

आदिवासी कला, इंसानी सभ्यता की मौलिक अभिव्यक्ति होती हैं। यह उनकी प्रजातीय विविधताओं और जातिमूलक जटिलता के साथ आपस में बुनी हुई, राष्ट्र की विविध सांस्कृतिक विविधता का प्रमाण होती हैं। दुनिया भर की जनजातीय कला आदिम सभ्यता के विभिन्न चरणों में समय के साथ, बहुत धीरे-धीरे विकसित हुई है, इसकी यात्रा रंगमय उत्कृष्टता का अनूठा प्रमाण है। जंगलों और पहाड़ों में पैदा होकर विकसित हुई देश की ये कलात्मक परंपराएँ गहरे रूप में उन समुदायों की व्यवस्था और उनके व्यवहार के साथ जुड़ी हुई हैं और बेशक हर कला अपने एक अनूठे सांस्कृतिक मूल्यों में लिप्त नज़र आती है।

यह कला देशज अभिव्यक्ति है, ख़ासतौर से दृश्य कला रूप में उभर कर सामने आती हैं, जैसे चित्रकला, जो अपने-अपने सम्बंधित समाज और समुदायों के विशेष दैनिक जीवन, परंपराओं, और सांस्कृतिक विरासत के उन मिश्रित भावों को दर्शाती हैं जिनका अनूठा सरोकार उस समाज की वास्तविकताओं से है जिनका एक आदर्श मानवीय सरोकार होता है। आदिवासी समुदायों की कला अक्सर अपने उत्सवों, अपने वातावरण और इर्द-गिर्द के प्राणियों और साथ की चीज़ों को अपने चित्रण में शामिल करते हैं जो उनकी जिन्दगी के लिए सार्थक होते हैं। भावों और अभिव्यक्ति का सरस मिश्रण आदिवासी भारत की अनूठी विरासत है। यह मिश्रण उन आदिवासियों को अलग-अलग क्षेत्रीय सौंदर्य प्रदान करता है जो भारतीय कला परंपरा का एक अत्यंत महत्वपूर्ण पहलू है। कला गीत है, संगीत है, निर्माण है और सजावट है। यह आवरण पर की गई चित्रकारी है। ये अलग-अलग संदर्भों में संस्कृति के अवयव हैं, और संस्कृति इन सबकी कारक हैं।

'संस्कृति' शब्द किसी समुदाय विशेष के धार्मिक व्यवहार, उनकी सोच, परंपराओं और अनुष्ठानों का संकलित रूप होता है। लोकमानस के बीच संस्कृति अपना विस्तार लेती है- इंसान और तमाम जीव-जंतुओं के अलावा कुदरती अवयवों के बीच सात्विक संबंधों के निर्वाह का

लेखक विकास पत्रकार हैं और आदिवासी मामलों के जानकार हैं। ई-मेल : amarendra.kishore@gmail.com

तरीका तय करती है। यही कारण है कि प्राकृतिक ध्वनियों के साथ-साथ पक्षियों और जानवरों की गतिविधियों के साथ स्थानीय कलाओं का कैनवास विकसित होता है जिस पर विभिन्न लोगों के समूह की शैलियों की रेखांकित अभिव्यक्ति प्रकट होती है। संस्कृति जीवन की विभिन्न धाराओं को शामिल करती है, जैसे एक समुदाय की अखंडता, परंपराएं और साझा अनुभव, इनका सम्मिलन होता है। समूह-समाज या कुनबा के समाजीकरण और उनकी अंतःक्रिया के माध्यम से समुदाय के भीतर एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक संस्कृति प्रसारित होती है, स्थानांतरित होती है। भारतीय सन्दर्भ में यह व्यक्ति और समुदायों की पहचान को आकार देती है, उनके दृष्टिकोण, विश्वास और व्यवहार को प्रभावित करती है। महत्वपूर्ण बात यह है कि संस्कृति इंसान का नए परिवेश, गतिविधि या इस तरह के समायोजन में मार्गदर्शन भी करती है। यह अभिव्यक्ति का आधार बन जाती है। जीवन का निर्माण करती है और इन तमाम विशेषताओं के साथ आजीविका के शुद्ध युग्मनज का निर्माण करती है। इसलिए, स्थानीय संस्कृति गतिशील होती है और समय के साथ बदल जाती है- संस्कृति में दृढ़ता नहीं होती, बाहरी प्रभावों के प्रति सजग होकर भी समायोजन कर लेती है। इसलिए, यह जिज्ञासा पनपती है कि क्या स्थानीय समुदायों की लोक कलाएं देश और उनकी संस्कृति के मूल्यों को समृद्ध करने में योगदान देती हैं? इस बात पर विचार करना ज़रूरी है। तभी हम संस्कृति को संरक्षित रखने के लिए कलाओं की भूमिका की चर्चा कर सकते हैं।

जनजातीय रचनाएं निस्संदेह आधुनिक सांस्कृतिक विरासत के जीवंत भंडार के रूप में काम करती हैं। इसलिए, पहाड़ों-जंगलों और कंदराओं की देशज रचनाएं कई आदिवासी समुदायों की मान्यताओं, रीति-रिवाज़ों और परंपराओं की निरूपक होती हैं, उन सबका प्रतिनिधित्व करती हैं। यह वन्य समाज की धार्मिक मान्यताओं, अनुष्ठानों और रोज़ की ज़िंदगी की घटनाओं से उपजी कहानियों-कहावतों और मुहावरों का संसार सजाती हैं, जो प्रकृति और उससे परे रहस्यमय क्षेत्रों के साथ उनके गहरे बंधन को दर्शाती है। भारत के विशेष संदर्भ में, मध्य प्रदेश के गोंड और झारखंड के संथाल के बीच रंगीन पेंटिंग स्थानीय भावनाओं का सार प्रस्तुत करती हैं; छत्तीसगढ़ के बस्तर में मुरिया नृत्य विचारों और भावनाओं के साथ गूंजते हुए जीवन की आध्यात्मिकता को दर्शाते हैं। गुजरात और मध्य प्रदेश की राठवा, भिलाल और नायका जनजातियों के बीच पिथोरा पेंटिंग भारतीय जनजातीय कला का एक और अच्छा उदाहरण है। ओडिशा की ढोकरा पीतल की मूर्तियां प्राचीन कहानियों की ओर ले जाती हैं, जबकि पश्चिम बंगाल की टेराकोटा बांकुरा भावनाओं को मृदा कला से व्यक्त करने का सबसे सरल माध्यम है।

भीमबेटका गुफा चित्र स्पष्ट रूप से प्रकृति के साथ आदिम मानव संबंध के सार को दर्शाते हैं, जो अद्वितीय गहराई और भावना के आयामों को निष्ठा और ईमानदारी के साथ प्राकृतिक दुनिया के उपहारों के प्रति गहरी श्रद्धा व्यक्त करते हैं। यहां पहुँच कर कोई भी स्पष्ट रूप से महसूस कर सकता है कि कैसे नदियाँ कभी पहाड़ों के बीच बहती थीं, या कितने युगों पहले, समुद्र की निरंतर लहरों ने इन चट्टानों को तराशा था। हवाओं के थपेड़ों से मिट्टी में आकृतियाँ आकार ले गईं। उनके भीतर गुफाएँ बनाई गईं, जहाँ आदिमानव

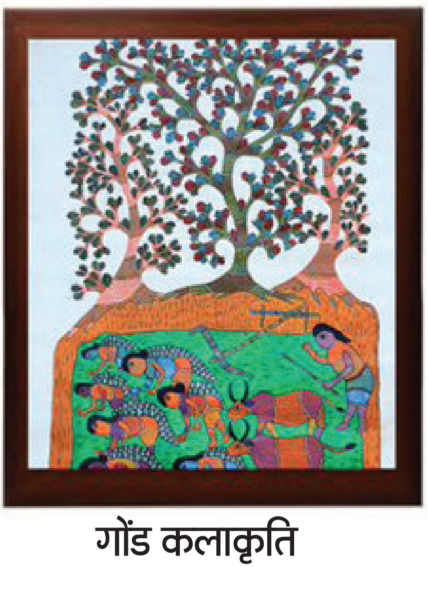

गोंड कलाकृति

मध्य प्रदेश की गोंड जनजाति की कलाकृतियों में दृश्य सरलता पर ज़ोर दिया जाता है। वे अपने घरों के फर्श, दरवाज़े और दीवारों पर मिट्टी का लेप लगाते हैं और फिर बांस से बने ब्रश से विभिन्न रंगों से बनी मिट्टी से, जो उनके आसपास प्राकृतिक रूप से उपलब्ध हैं, का उपयोग करके रूपांकन करते हैं। मुक्त हस्त से चित्रित ये दो आयामी पेंटिंग कलाकार की जीवन की धारणा को दर्शाती हैं जबकि अनुपस्थित 'गहराई' सादगी पर ज़ोर देती है।

मैकल हिल्स की गोंड कलाकृति, मध्य प्रदेश

पट्टचित्र कला, उड़ीसा

चित्रकला की कला में लिप्त थे। यह कलाकृति उन प्रतिष्ठित पूर्वजों की उत्कृष्ट भावनाओं का एक मार्मिक प्रमाण है। चित्रों की ये अभिव्यक्ति कुदरती कैनवास पर खुशियों और उल्लास के साथ सजाई गई एक आदिम अभिव्यंजना है। जैसे ओडिशा की पट्टचित्र कला उस कालखंड में उपलब्ध कैनवास अर्थात ताड़ के पत्तों पर एक समय साधारण घरेलू सजावट थी, लेकिन अब यह एक व्यावसायिक कला के रूप में विकसित हो गई है, जो दैनिक जीवन के दृश्यों के साथ कच्चे रेशम के कपड़े को सजाती है। इसी तरह, राजस्थान के इंडिगो दाबू फैब्रिक प्रिंट विभिन्न प्रकार की भावाभिव्यक्ति पेश करते हैं। ओडिशा के दक्षिणी छोर पर मलकानगिरी के बोंडा आदिवासी समुदायों का आभूषण पैतृक विरासत का भावपूर्ण सार है।

प्रत्येक रचना की अपनी व्याख्या होती है, चाहे वह उत्तर-पूर्वी राज्यों से हो या गुजरात के काठियावाड़ से, आदिवासी भारत के विभिन्न और बहुमुखी समुदायों द्वारा संजोए गए अद्वितीय विश्वासों के प्रतिबिंब के रूप में हमें आकर्षित करते हैं। आज खुशी इस बात की है कि आदिवासी लोग अपनी प्राचीन संस्कृति को जीवित रखने के लिए कड़ी मेहनत करते हैं, जिस संस्कृति में है प्रकृति का संगीत, सामुदायिक परंपराएं, अनुष्ठान और कला, जिनका सीधा नाता आसपास के परिवेश से है, कुदरती अवयवों से है। प्रकृति ने, उसके संसाधनों ने अपनी तरह उन आदिवासियों को सोचना, समझना और रहना सिखाया है। आदिवासी अपने पर्यावरण की देखभाल करते हैं और अपने पुश्तैनी संसाधनों का बुद्धिमानी से उपयोग करके सम्पूर्ण प्रकृति के साथ सद्भाव रखते हैं। भारतीय जनजातीय कला रंगमय प्रकृति से प्रभावित है और अपनी लोककथाओं और गीतों में कुदरत तथा प्रत्येक प्राणी से लगाव रखती है। आदिवासियों के गीत, लोकाख्यान और उनकी चित्रकारी परंपरागत रीति-रिवाज़ों, धार्मिक प्रतीकों, रोज़मर्रा की ज़िंदगी और सामाजिक मुद्दों के बारे में होती हैं। पीढ़ियों से चली आ रही परंपराएं, मूल्य और अनुष्ठान उनके समुदायों को मज़बूत और स्थिर रखने में मदद करते हैं। एक साथ रहकर और अपने अनुभव साझा करके, वे चुनौतियों का सामना करने और खुद के प्रति सच्चे रहने में सक्षम होते हैं। इसके अतिरिक्त, मध्य भारत में खानाबदोश जीवनशैली इन कलारूपों में अभिव्यक्ति पाती है, जिससे उनकी कथा और समृद्ध होती है। जनजातीय कला दर्शाती है कि किसी जनजाति की 'संस्कृति' क्या है। यह उनके अतीत की कहानी बताती है, वे किन मूल्यों और मान्यताओं में विश्वास करते हैं और उनका सम्मान करते हुए कैसे रहते हैं, यह स्थानीय लोककला और कथाओं से पता चलता है। आदिवासी कला कई अलग-अलग शैलियों में आती है क्योंकि प्रत्येक जनजाति के काम करने का अपना तरीका होता है। कुछ आदिवासी समुदाय सुंदर मनके बनाने के लिए प्रसिद्ध हैं, जबकि अन्य अपनी रंगीन पेंटिंग या मूर्तियों के लिए जाने जाते हैं।

आदिवासी लोककला के विविध आयाम होते हैं, अनेक रूप और अभिव्यक्तियाँ होती हैं, लेकिन उनकी सबसे पुरानी कला चित्रकला है, जिसका कोई ज्ञात इतिहास नहीं है। चाहे वह बारीक रूप से तैयार किए गए लकड़ी के खिलौने या फर्नीचर का आकर्षण हो, धातु के काम के जटिल डिज़ाइन, या रंगीन कपड़ों की नाज़ुक बुनाई- इन तमाम कला की उत्पत्ति और विकास के बारे में बहुत पहले के युगों से पता चलता है, जब मानवता धातु के युग में पाँव पसार रही थी; कृषि ने जड़ें जमा ली थीं और मानवता ने अपने स्वरूप को कपड़ों में छिपाना शुरू कर दिया था। हालांकि बाद के युगों में कला के असंख्य रूप विकसित हुए, चित्रकला की कला पुरातनता के अवशेष के रूप में खड़ी है, इसका मौलिक सार प्रश्न या विवादों से परे है। उनकी पेंटिंग की उत्पत्ति रहस्य में डूबी हुई है, इसकी शुरुआत का कोई ज्ञात युग नहीं है। अथक प्रयासों के बावजूद, यह केवल अनुमान लगाया गया है कि रेखाचित्र बनाने की कला मानवता की आदिकालीन अवस्था में हुई थी जब तीर-कमान के आधार पर वह गुफाओं में रहता था, शिकार करता था। इस प्रकार,

गुफा चित्रकला जनजातीय कलात्मकता के प्राचीन सार के रूप में उभरती है, क्योंकि आज तक खोजे गए प्राचीन गुफा चित्र उन्हीं परिदृश्यों की शोभा बढ़ाते हैं, जहां जनजातीय समुदाय निवास करते रहे हैं, जो उनकी कला और उनकी पैतृक मातृभूमि के बीच के शाश्वत संबंध प्रस्तुत करते हैं।

भारत के जनजातीय क्षेत्रों की सांस्कृतिक विविधता, रीति-रिवाज़ और सामाजिक परंपराएं पूरे देश को मंत्रमुग्ध कर देती हैं। यह एक अनोखी दुनिया है जहां सौहार्द, एकजुटता और सद्भाव सर्वोच्च होते हैं, अभी उनकी चित्रकला पर अनुसंधान होना बाकी है। जनजातीय कला की एक विशिष्टता होती है, जो सीधे प्रकृति और उसके विभिन्न संसाधनों, यानी जल, जमीन और जंगल (जल, जमीन और जंगल) से जुड़ी होती है। यह सतत है, निरंतर है, साथ में यह मनुष्य और प्रकृति के बीच पूर्ण सामंजस्य का प्रतीक भी है। खेद की बात है कि विकास के नाम पर 'लोकतांत्रिक आधुनिकता' लाने के लिए किए जा रहे मजबूत प्रयासों को देखना आज वास्तव में बहुत दुखद प्रसंग है, यहां तक कि सुदूर पहाड़ों और जंगलों में भी, जहां मानव बस्तियां आवश्यकताओं की कमी से जूझती हैं, वहाँ कला मौजूद भी है तो उसकी बेकद्री है। अभी तक पहाड़ी इलाकों के अधिकतर हिस्से कई चुनौतियों का सामना कर रहे हैं, लेकिन आदिवासी लोककला की जीवंत उपस्थिति अपनी अटूट ताकत के साथ मौजूद है– यह स्वदेशी तेवर और जीवन के अद्वितीय दर्शन के प्रतीक के तौर पर आज भी मौजूद है किन्तु कुछ अपवादों को छोड़कर इनके भविष्य को लेकर कोई बेहतर पहलकदमी देखने को नहीं मिल रही है। हम विकास तो करते जा रहे हैं मगर इस बात का ध्यान क्यों नहीं रखते कि लोक परंपरा में सबसे बड़ी बाधा 'आधुनिकता' है, जो स्थानीय लोक की मानसिकता और परंपरा को नज़रअंदाज करके बनाई गई है।

यह महत्वपूर्ण है कि आदिवासी भारत की परंपरा और सांस्कृतिक विविधता अपनी प्रासंगिकता और तर्कसंगतता के साथ दुनिया में सबसे प्राचीन और अद्वितीय है, क्योंकि भारतीय जनजातियाँ अपनी अनूठी कलात्मकता को सुंदर तरीकों से व्यक्त करती हैं। समूचे राष्ट्र के सामाजिक-ऐतिहासिक संक्रमण तथा सामाजिक परिवर्तन जैसे कारक बेहद महत्वपूर्ण होते हैं। यही वजह है कि उन जनजातीय समूहों की कलात्मक दृष्टिकोण की शैली अपने परिवेश और परिस्थिति के कारण विभिन्न किस्म के आकार लेती है। जंगलों-पठारों और पहाड़ों की यह कला हमारी समृद्ध सभ्यता का एक अनमोल रत्न है, यह मान्य बात है। समूचे देश में प्रतिभाशाली जनजातीय कारीगरों द्वारा जीवंत रंगों के साथ इन्हें तैयार किया जाता है। प्रकृति के करीब होने के कारण, आदिवासी अपनी कला में क्षेत्रीय स्पर्श समाहित करते हैं। यानी स्थानीयता का पुट कला के दर्शन पक्ष को मज़बूती देता है। कला की खासियत होती है कि इसे बनाने वालों की विश्वास प्रणालियाँ तथा पद्धतियां अपने मूल भावों को इतना आकर्षक बना देती हैं कि बेहद सहज और आसान-सा दिखने वाली कृतियां भी विषय की व्याख्या के लिए प्रेरित करती हैं।

कृतियों के अपने उद्देश्य होते हैं, उनके ज़रिए कोई कुछ कहना चाहता है। दूसरे शब्दों में, कलाकार अपनी भावनाओं को रंगों और आकृतियों का स्वर देता है। रंग भावनाएं हो जाती हैं, हल्की या बेहद चटकती हुई।

कला और संस्कृति के लिए सीमाओं में नहीं बँधना ही सृजनात्मकता का विशाल पक्ष है। इन बातों का प्रमाण है झारखंड के हज़ारीबाग़ में रजरप्पा गुफा और बिहार की कैमूर पहाड़ियों में विभिन्न गुफा आश्रयों के प्राचीन शैल चित्रों के विषयों की विविधता। वहाँ का परिवेश बेहद व्यापक रहा है जिन्होंने आदिम मानव को जंगल और वन्य जीवन के प्रति अपनी भावनाओं और संवेदनाओं को खोजने और प्रदर्शित करने के लिए प्रेरित किया। प्रकृति की सुंदरता ने खानाबदोशों और शिकारियों के जीवन को कला प्रेमियों में बदल दिया है। अंततः इसने लोगों को एक साथ ला दिया है, उनके भीतर सामाजिक एकता को सफलतापूर्वक बढ़ावा दिया है। हालाँकि, सवाल यह भी उठता है कि इन विविध विशेषताओं के साथ जीने वाले वनवासी समाज की कलात्मक अभिव्यक्तियाँ अपने सांस्कृतिक लोकाचार को संरक्षित करने में कितनी कुशल और सतर्क हैं। यह सवाल बहुत मायने रखता है।

जनजातीय जीवन और परंपरा या पर्यावरण कला के विकास और पारिस्थितिकीय विकास के लिए दो महत्वपूर्ण पूर्वापेक्षाएँ हैं। इन दोनों पहलुओं में स्वदेशी समुदाय अविश्वसनीय रूप से भाग्यशाली रहे हैं। परंपरा का पालन जनजातीय समुदायों का सांस्कृतिक गुण है। इसी प्रकार ख़ास वातावरण सदियों से चला आ रहा जीवन का दोषरहित रूप है, जो प्राकृतिक है और निर्बाध रूप से जारी है। इसलिए आदिवासी कला वास्तव में उन परिदृश्यों और परिवेशों के साथ अपने घनिष्ठ संबंध पर पनपती है जिन्हें वह चित्रित करती है। पहाड़ियों, नदियों, गांवों और समाजों के जीवंत प्रतिनिधित्व के माध्यम से, आदिवासी कला प्राकृतिक दुनिया के सार को समाहित करती है, दर्शकों को इसकी मनोरम सुंदरता और गतिशील ऊर्जा में डूबने के लिए आमंत्रित करती है। प्रकृति के साथ यह गहरा जुड़ाव महज दृश्य प्रतिनिधित्व से परे है, जो शांति से लेकर आश्चर्य और विस्मय तक कई प्रकार की भावनाओं को उद्घाटित करता है। मानव जाति और अंतरिक्ष के बीच सामंजस्यपूर्ण संबंध का जश्न मनाने में, आदिवासी कला प्राकृतिक दुनिया के

साथ हमारे आंतरिक संबंध और कलात्मक अभिव्यक्ति की स्थायी शक्ति के लिए एक कालातीत से परे और पीछे के प्रमाण के रूप में काम करती है।

लोककला के संदर्भ में सांस्कृतिक अस्मिता का प्रश्न सम्पूर्ण विश्व के लिए महत्वपूर्ण है। भारतीय संदर्भ में इस मुद्दे पर अभी भी गहरी बहस और चर्चा चल रही है, लेकिन इस बात पर विचार करना ज़रूरी है कि लोककला का अभ्यास करने वाले समाज में क्या महत्वपूर्ण है व्यक्ति या संपूर्ण समुदाय। व्यक्ति का महत्व स्वार्थ में निहित होता है, जबकि समाज के महत्व को स्वीकार करना सद्‌भाव और एकजुटता का प्रमाण है। वास्तव में, यह पूछना महत्वपूर्ण है कि क्या हम व्यक्ति हैं या एक बड़े समुदाय के सदस्य हैं।

स्वदेशी समुदायों की रचनात्मकता, विशेष रूप से आदिवासी कलाकृति, सदियों की परंपरा में निहित है। उनकी कला एक परंपरा के रूप में अपना व्यापक महत्व रखती है, जो न केवल इसके अस्तित्व के बारे में है बल्कि समय के साथ इसकी बढ़ती लोकप्रियता के बारे में भी है। दरअसल, देश के विभिन्न सांस्कृतिक समूहों के बीच उनकी कलात्मक कल्पनाओं की चर्चाएं, प्रदर्शनियां और समीक्षाएं हो रही हैं और उनकी कला की अनूठी विशेषताओं की समीक्षा शुरू हो गई है। यद्यपि संवादों से उत्पन्न होने वाले बौद्धिक संघर्षों के बारे में चिंता है, स्वदेशी सांस्कृतिक प्रभुत्व, आत्म-पुष्टि, या सांस्कृतिक विनियोग विभिन्न सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों और सबसे ऊपर अन्वेषण के दायरे से अलग अपनी पहचान सफलतापूर्वक स्थापित करते प्रतीत होते हैं। उदाहरण के लिए, मध्य प्रदेश की मैकल पहाड़ियों की प्रसिद्ध गोंड कलाकृति या महाराष्ट्र की सह्याद्री रेंज में वारली पेंटिंग विवादमुक्त लोककला है जो विविधता और समावेशन का एक अमूल्य खजाना है, जिसे सरकार और समाज ने पूरे दिल से अपनाया है। सरकार ने इस कला को भी उतनी ही मान्यता दी है जितनी बहुप्रशंसित बिहार की मधुबनी लोककला को। परिणामस्वरूप, इस कला और इससे जुड़े कलाकारों को व्यापक मान्यता मिल रही है। जिस तरह संथाल कलाकृति को एक समय अंतरराष्ट्रीय स्तर पर ख्याति मिली थी, उसी तरह अब अन्य जनजातीय लोककला की पहचान स्थापित हो रही है।

अब स्थिति यह है कि भारत में स्वदेशी लोककला ने चित्रकला और कलाकृति के अन्य रूपों के माध्यम से मुद्दों को प्रस्तुत किया है, जिससे रचनाओं के बारे में हमारी समझ मज़बूत हुई है। इसने हमें अपने सांस्कृतिक मूल्यों और पूर्वाग्रहों पर पुनर्विचार करने के लिए भी प्रोत्साहित किया है। यह खुशी की बात है कि राष्ट्र ने जनजातीय समुदायों की भावनाओं और सौहार्दपूर्ण, सात्विक जुड़ावों के पूरे वर्णक्रम को स्वीकार कर लिया है, जिससे जनजातीय कला के भीतर एक अनुकूल माहौल बना है। राष्ट्र का लोकाचार व्यक्तित्व और लगाव की भावना को दर्शाता है जो लोग किसी विशेष संस्कृति या समूह के प्रति महसूस करते हैं। लोककलाओं की बढ़ती वैश्विक मान्यता के कारण, स्वदेशी रीति-रिवाजों, परंपराओं, विश्वासों, मूल्यों, भाषा और अन्य पहलुओं के बारे में जानने की जिज्ञासा लगातार बढ़ रही है जो किसी भी समूह के जीवन के अनूठे तरीकों को परिभाषित करते हैं। यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि सांस्कृतिक पहचान यह निर्धारित करती है कि व्यक्ति खुद को और दुनिया में अपनी जगह को कैसे समझते हैं, क्योंकि इस अनुभव में सकारात्मकता का समावेश राष्ट्रीय एकता को मज़बूत करता है।

इस घोषणा का सार यह है कि इस देश की मूल आबादी के बीच, लोककला अपने आंतरिक आकर्षण को प्रदर्शित करते हुए फलती-फूलती है। सदियों पहले जन्मी इसकी मौलिक प्रकृति आज भी अपने मूल रूप में काफी हद तक प्रतिबिंबित होती है, जो भारत की पहचान का एक अतुलनीय पहलू है। जनजातीय प्रजातियों की संस्कृति, उनकी विविधता और जीवंतता, शुद्ध प्रामाणिकता से ओत-प्रोत, वैश्विक मानस के अंतरतम को मोहित कर लेती है। ये प्राकृतिक चमत्कार इस देश के सुदूर कोनों में रहने वाले लोगों के लिए अत्यधिक खुशी, उत्साह और भव्यता लाते हैं। दरअसल, 500 से अधिक आदिवासी समुदायों (उनमें से कुछ रेखाचित्रों की कला से परिचित नहीं थे) की विविध कलाएं उनके लोककथाओं, कहानियों, मुहावरों और अभिव्यक्तियों के साथ जटिल रूप से बुनी गई हैं। प्रत्येक कलाकृति की अपनी कहानी होती है, जो इतिहास, परंपरा और अद्वितीय सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में निहित होती है। बाज़ार के प्रभाव से पहले, भावनाओं और आत्मा के मिश्रण से हस्तशिल्प का जन्म हुआ, जिससे अमूल्य और अद्वितीय उत्कृष्ट कृतियों का निर्माण हुआ। मन और आत्मा की गहराइयों से उपजी ये रचनाएं व्यावसायिक हितों से अछूती रहीं। बीते युग में, हस्तशिल्प समाज के प्रतिनिधित्व के रूप में कार्य करता था, जो राज्य की सर्वोच्च शक्ति के समक्ष अपनी पहचान को मज़बूत करता था। कई भारतीय जनजातीय समुदायों में लोग एक साथ रहते हैं और बढ़ते हैं, उनके पास जो कुछ भी है उसे साझा करते हैं। यह निकटता उनकी कलाकृति और संस्कृति को पनपने में मदद करती है।

जनजातीय समाज के लोग केवल अपने बारे में सोचने के बजाय समूह में सभी का ख्याल रखते हैं। स्वदेशी समुदायों में, अक्सर सामुदायिक स्तर पर अपने कौशल को विकसित करते हैं और सामान्य प्रक्रिया में उनकी कला समाज से पोषित होने लगती है। समाज

जादोपटिया पेंटिंग, झारखंड

के लोग विभिन्न शिल्प, कला और पारंपरिक प्रथाओं को सीखने और उनमें महारथ हासिल करने में एक-दूसरे का समर्थन करते हैं। सामूहिक प्रयास और ज्ञान के आदान-प्रदान के माध्यम से, समुदाय के भीतर के व्यक्ति अपने कौशल को निखारते हैं, भविष्य की पीढ़ियों को तकनीक प्रदान करते हैं और सामूहिक रूप से अपनी सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण और विकास में योगदान करते हैं। यह समुदाय-आधारित दृष्टिकोण न केवल व्यक्तिगत क्षमताओं को बढ़ाता है बल्कि समुदाय के भीतर संबंधों को भी मज़बूत करता है, उनकी साझा परंपराओं और शिल्प कौशल में गर्व और पहचान की भावना को बढ़ावा देता है। कलात्मक विकास के क्षेत्र में, सांप्रदायिक एकता की भावना समाज को गहन सकारात्मकता प्रदान करती है, जो सांस्कृतिक लचीलेपन के आधार के रूप में कार्य करती है। जनजातीय समुदायों के ताने-बाने में गहराई से जाने से न केवल व्यक्तिगत भावनाओं का पता चलता है, बल्कि एक सामूहिक दृष्टिकोण का भी पता चलता है जिसके माध्यम से हर चुनौती का सामना साझा समझ के साथ किया जाता है। यह एकता, यह एकजुट करने वाली शक्ति ही है, जो न केवल समाज के ताने-बाने को मज़बूत करती है, बल्कि इसकी एकता की आधारशिला भी बनाती है। कितनी अच्छी बात है कि आदिवासी भारत में कला भेदभाव नहीं करती। वह मनुष्य के बजाय प्रकृति के साथ खुद को जोड़ती है।

जनजातीय कला अक्सर उनके अतीत के महत्वपूर्ण क्षणों को दर्शाती है, जैसे लड़ाई या धार्मिक उत्सव। यह हमें उनकी मान्यताओं और वे कैसे रहते हैं, इसके बारे में भी बताता है। इसका एक अच्छा उदाहरण ओडिशा की पट्टचित्र कला है। यह कला कलिंग राजवंश की चित्रकार जनजाति द्वारा बनाई गई थी, जो पूर्वी तटीय क्षेत्र में मौजूद थी, और अपने विस्तृत डिज़ाइन और चमकीले रंगों के लिए जानी जाती है। वे इसका उपयोग हिंदू मिथकों से कहानियाँ बताने के लिए करते हैं, और कभी-कभी ये चित्र धार्मिक अनुष्ठानों के दौरान मदद करते हैं।

यह बात बेहद महत्वपूर्ण है कि दुनिया भर में तमाम तरह की आधुनिकता के बीच स्वदेशी कला की मांग क्यों बढ़ रही है। क्या इसकी व्याख्या अत्यंत महत्वपूर्ण है? क्या रंगों का चयन और प्रयोग कुछ खास होते है? क्या इसका विषय अत्यधिक संवेदनशील या उपयोगितावादी है? क्या इसका वर्तमान घटनाओं से कोई संबंध है? क्या यह सामाजिक समरसता को मजबूत करने की अपील करता है? क्या संस्कृति के सभी पहलुओं को स्वदेशी लोक कला के माध्यम से देखा जा सकता है? इन प्रश्नों का विश्लेषण करके स्वदेशी कला को बहुत आसानी से समझा जा सकता है। चूँकि जनजातीय कला के विश्लेषण का मूल उद्देश्य इसकी अभिव्यक्ति के पीछे के इरादों को समझना है, इसलिए सवाल उठता है कि क्या घर की साज-सज्जा और व्यक्तिगत खुशी एक कलाकार की रचना का मार्ग प्रशस्त करती है? हालाँकि, यह सर्वविदित है कि सामुदायिक भावनाएं, एकजुटता की समझ और सद्भाव के प्रति प्रतिबद्धता आदिवासी जीवन का मूल सार है। कला का विकास सामूहिक रूप से समझ और सहमति से होता है। इसलिए उनकी कला हर तरह से अपने समाज की भावनाओं से गहराई से जुड़ी हुई है। उल्लेखनीय है कि जनजातीय कला का विषय व्यक्ति विशेष पर केन्द्रित नहीं होता है। यह समुदाय की बात करता है और हमेशा उनके पर्यावरण पर ध्यान देता है, उनका सम्मान करता है।

झारखंड और पश्चिम बंगाल के कुछ क्षेत्रों में प्रचलित जादोपटिया चित्रकला और एक हद तक सौरा चित्रकला के अलावा देश की तमाम जनजातीय चित्रकला के विषय कुदरत के अवयव होते हैं। जादोपटिया पेंटिंग में, मृत व्यक्ति को स्वर्ग में चित्रित करने, उनके पिछले कर्मों के परिणाम को दर्शाने पर ध्यान केंद्रित किया गया है। इस कला को देखकर मृतक के परिवार को संतुष्टि महसूस होती है। ऐसा करके कलाकार शोक मनाने वालों के दुःख को कम करने में विशेष भूमिका निभाता है। जादोपटिया की लोकप्रियता के सीमित विस्तार का कारण कुछ अनोखा है। आदिवासी समाज और उसका विश्व दृष्टिकोण किसी भी अन्य लोक

की तरह मृत्यु के बाद जीवन की कल्पना नहीं करता है। उनका मानना है कि मरने के बाद उनके साथी अदृश्य हो जाते हैं और उनके साथ पेड़ों और पहाड़ों में रहते हैं। स्वर्ग की अवधारणा आदिवासी संस्कृति से एक अलग धारणा है, लेकिन संताल परगना की परिधि में आदिवासी और गैर-आदिवासी लोगों के मिश्रण ने इस कला की सामग्री में कुछ बदलाव लाए हैं। यह बदलाव स्वाभाविक है।

जादोपटिया के अलावा तमाम जनजातीय कला में जंगल और जंगली जानवरों के बीच इंसानों को प्रमुखता से दिखाया गया है। इस समय, जादोपटिया का उल्लेख आवश्यक था क्योंकि यह एकमात्र आदिवासी कला है जो संताल और भूमिज जनजातियों के ऐतिहासिक दर्शन को पूरी तरह से व्यक्त करती है। यह केवल प्रकृति तक ही सीमित नहीं है, बल्कि जनजातीय जीवन, रीति-रिवाजों और त्यौहारों के साथ-साथ जीवन की उत्पत्ति, मृत्यु के बाद के जीवन और इसके मिथकों के बारे में मनोरम कहानियां भी बताती है। गोंड कला में वनों की समृद्धि और सघनता सामने आती है। चित्रण व्यक्तियों पर केंद्रित नहीं होता है बल्कि समूह में मनुष्यों पर केंद्रित होता है, अन्यथा पेड़ों, पहाड़ों और विशेष रूप से जंगल में जानवरों के जीवन पर ध्यान केंद्रित किया जाता है जहां कलाकार खुद को विसर्जित करता है।

वारली चित्रकला मातृ प्रकृति की अवधारणा पर ध्यान केंद्रित करती है, इसके तत्वों को इसके केंद्र में रखती है। यह कला पूरी तरह से ग्रामीण जीवन को अभिव्यक्त करती है, मनुष्यों को समूहों में चित्रित करती है। इस कला के चितेरे अपनी कला में निपुण होते हैं और अपने जीवन में प्रकृति और वन्य जीवन का गहरा सम्मान करते हैं। वारली कलाकार अपनी पेंटिंग के लिए पृष्ठभूमि के रूप में अपनी मिट्टी की झोपड़ियों का उपयोग करते हैं, ठीक उसी तरह जैसे प्राचीन लोग गुफा की दीवारों को अपने कैनवास के रूप में इस्तेमाल करते थे।

प्रकृति के गहन आलिंगन में, आदिवासी समुदाय कला के माध्यम से अपनी गहरी भावनाओं को कोमलता से व्यक्त करते हैं। यह एक निर्विवाद सत्य है कि सौरा पेंटिंग, ओडिशा के हृदयस्थलों से उत्पन्न एक शानदार लोक-कला, वारली परंपरा की गूंज के साथ गूंजती है। यह एक वसीयतनामा और ज्ञान के स्रोत के रूप में खड़ा है, जो प्राकृतिक दुनिया के लिए इन स्वदेशी संस्कृतियों की गहरी श्रद्धा को दर्शाता है। इन कलाकृतियों के भीतर पेड़ों की पवित्रता, जानवरों की गरिमा और आदिवासी जीवन के लचीलेपन के प्रति गहरी आस्था देखी जा सकती है। सौरा कला के सार के केंद्र में आर्बरियल के प्रति अटूट श्रद्धा निहित है, एक ऐसी श्रद्धा जो महज कलात्मक अभिव्यक्ति से परे है और अस्तित्व की आत्मा में उतरती है। फिर भी, इस श्रद्धा के बीच, नई बारीकियाँ सामने आती हैं, जो लगातार विकसित हो रहे संदर्भों में जीवन के असंख्य पहलुओं की झलक दिखाती हैं। हरे-भरे कैनवास के बीच, किसी को न केवल जंगल के जीवों और विनम्र निवास का चित्रण मिलता है, बल्कि रोज़मर्रा के अस्तित्व का सूक्ष्म चित्रण भी मिलता है- महिलाएं अपने साधारण बर्तनों के साथ, बच्चे अपनी मासूम खुशी के साथ, और पुरुष अपने प्यारे पशुओं की देखभाल करते हैं। हालांकि, यह कला रूप महज सौंदर्यवादी खोज से परे है; यह दोहरे उद्देश्य को पूरा करता है- कलाकार के कौशल को निखारने के साथ-साथ शिल्प का पोषण भी करता है। सौरा कला, अपनी उत्कृष्ट कलाओं के साथ, चट्टानों और दरारों के ऊबड़-खाबड़ चेहरों को सजाती है, दिवंगत आत्माओं को श्रद्धांजलि देती है और अनदेखी विकृतियों से रक्षा करती है। प्रतीकात्मक पूजा पवित्र अनुष्ठानों और पारंपरिक उत्सवों के साथ सहज रूप से जुड़ी हुई है, जो पीढ़ियों तक फैली सांस्कृतिक विरासत की एक श्रृंखला बुनती है। अपनी अद्वितीय सुंदरता, मनमोहक आकर्षण और गहन प्रतीकवाद के लिए मनाई जाने वाली ये कलाकृतियां पारंपरिक ज्ञान के वाहक, पैतृक ज्ञान के भंडार और कालातीत लोककथाओं के संरक्षक के रूप में काम करती हैं। सौरा पेंटिंग न केवल एक कलात्मक प्रयास के रूप में उभरती है, बल्कि स्वदेशी समुदायों के साहित्य और दर्शन के रूप में उभरती है, जो उनके अस्तित्व की कालातीत गाथा बताती है और प्रकृति के आलिंगन की शाश्वत लय को गुंजायमान करती है।

स्वदेशी समाज की कला प्रकृति में अपरिभाषित है; इसलिए, यह जितनी शुद्ध है उतनी ही गहरी भी। आदिवासी रंगों के साथ अपनी सजावट में, वे रसायनों के बारे में किसी भी ज्ञान के बिना प्रकृति की उपज को अपनी रचनाओं में शामिल करते हैं। इसलिए उनके बीच हानिकारक या गैर-हानिकारक रसायनों की चर्चा नहीं होती। वे कला को अदृश्य प्राकृतिक शक्ति का उपहार मानते हैं। अतः कला के माध्यम से भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए वे वनस्पतियों के विभिन्न तत्वों पर निर्भर रहते हैं। जनजातीय रचनाकार पृथ्वी और उसके उपहारों का सम्मान करते हैं, सम्मान और श्रद्धा की कहानियां बुनने के लिए अपनी रचनात्मकता का उपयोग करते हैं। उनकी पेंटिंग और मूर्तियां अतीत की खिड़कियों की तरह हैं, जो आने वाली पीढ़ियों की प्रशंसा के लिए अपने पूर्वजों की परंपराओं और मान्यताओं को संरक्षित करती हैं।

अपनी कला के माध्यम से, जनजातियां शक्ति और उद्देश्य पाती हैं, ज्ञान और गर्व के साथ जीवन की यात्रा में उनका मार्गदर्शन करती हैं। अंत में, भारतीय जनजातीय कला केवल सुंदर चित्रों के बारे में नहीं है- यह संस्कृति को संरक्षित करने और परंपराओं को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक स्थानांतरित करने के बारे में भी है।

भारतीय जनजातीय कला की रंगीन दुनिया में एक खास तरह का जादू है। यह सब जीवन की भावनाओं और रहस्यों को व्यक्त करने के बारे में है। जनजातीय कला भारतीय संस्कृति का एक आकर्षक हिस्सा है। यह अद्भुत और सुंदर चीज़ों से भरे खजाने की तरह है। भारत में पारंपरिक जनजातीय कला जनजातीय जीवन की विशेष जीवंतता को पकड़ने की कोशिश करती है जो कभी ख़त्म नहीं होती। यह सिर्फ अतीत की बात नहीं है; यह आज भी जीवित और स्वस्थ है। यह भारत को अद्वितीय और विशेष बनाने का एक बड़ा हिस्सा बन गया है।

आदिवासी लोककला के क्षेत्र में, असंख्य तत्व प्रकृति के अपने हाथ से स्पंदित होते हैं। चित्रकला के रंग किसी भी मिलावट से अछूते रहते हैं; वे पूरी तरह प्रकृति के साथ प्रतिध्वनित होते हैं। जनजातीय समाज अपने रंगों को पहाड़ों, मिट्टी और जैविक फसलों से प्राप्त करते हैं, और उन्हें जीवंत रंगों में ढालते हैं। ऐसी रचनाएं हानिकारक नहीं होती हैं, बल्कि पूरी तरह से प्रकृति को समर्पित होती हैं, जो पर्यावरण के प्रति श्रद्धा का प्रतीक हैं। प्रकृति के प्रति श्रद्धा बनाए रखना उनकी संस्कृति का सम्मान करना है, वह आधार जिस पर उनका जीवन आनंद से भरा है। उदाहरण के लिए, वे चमकीले लाल रंगों को गढ़ने के लिए गेरू पत्थर, विशेष रूप से हेमेटाइट का उपयोग करते हैं। पीले रंग के लिए हल्दी या पीला गेरू पत्थर का प्रयोग किया जाता है। कार्बन ब्लैक से प्राप्त लैंप सूट, काले रंगों के लिए उपयोग में आता है। सबसे बढ़कर, पलाश के फूलों से नारंगी रंग प्राप्त किया जाता है, जबकि भूरे पत्थरों से भूरा रंग निकलता है। हरे रंग का अधिग्रहण सेम के पत्तों की पत्तियों पर निर्भर करता है, और असली नीला नील की गहराई से ही प्राप्त होता है।

कल्पना के माध्यम से, एक जनजाति को एक आत्मनिर्भर समुदाय के रूप में समझा जा सकता है, जो स्वायत्त रूप से खुद को बनाए रखने की अंतर्निहित क्षमता से प्रतिष्ठित है। आमतौर पर, एक जनजाति अपेक्षाकृत बंद समाज के रूप में कार्य करती है, जिसका अर्थ है कि बाहरी समूहों या प्रभावों के साथ इसकी बातचीत सीमित होती है। प्राचीन गुफा चित्रों और समकालीन जनजातीय कला में प्रकृति, जानवरों और मनुष्यों को किसी विशिष्ट समूह के प्रतिनिधित्व या अन्य कुलों के साथ मुठभेड़ों या संघर्षों का विवरण देने के रूप में चित्रित नहीं किया गया है। इसके बजाय, वे आत्मनिर्भरता के सार को मूर्त रूप देते हैं, जिसे अक्सर पदानुक्रम या अन्य जनजातियों के साथ जुड़ाव के बजाय घनिष्ठ समुदाय बनाने वाले व्यक्तियों के माध्यम से चित्रित किया जाता है। अनिवार्य रूप से, एक जनजाति का खुलापन अक्सर उसकी आत्मनिर्भरता से जुड़ा होता है, जो अलग-अलग संस्थाओं के एक समामेलन के बजाय व्यक्तियों के एक पारिवारिक इकाई में एकजुट होने के परिणामस्वरूप उभरता है। दूसरे शब्दों में, एक जनजातीय समुदाय जितना अधिक आत्मनिर्भर होता है, वह बाहरी संसाधनों या सहायता पर उतना ही कम निर्भर होता है, इस प्रकार संभावित रूप से अधिक अलगाव या स्वतंत्रता होती है। यह आत्मनिर्भरता खाद्य उत्पादन, आश्रय निर्माण, सामाजिक संगठन और सांस्कृतिक प्रथाओं सहित आदिवासी जीवन के विभिन्न पहलुओं में प्रकट हो सकती है। ज़ाहिर है कुछ हद तक, इन सभी विशेषताओं को उनके दृश्य आख्यानों में देखा जा सकता है।

आदिवासी कला अक्सर देशी समुदायों की अद्वितीय आध्यात्मिक मान्यताओं और सांस्कृतिक प्रथाओं की मार्मिक अभिव्यक्ति के रूप में कार्य करती है। ये कलात्मक रचनाएँ अक्सर आदिवासी पौराणिक कथाओं, अनुष्ठानों, समारोहों और दैनिक जीवन के दृश्यों को चित्रित करती हैं, जो उनके आध्यात्मिक विश्वदृष्टि में गहन अंतर्दृष्टि प्रदान करती हैं। मध्य भारत से लेकर महाराष्ट्र, गुजरात और विशेष रूप से कर्नाटक के पश्चिमी तटीय क्षेत्रों तक फैली, आदिवासी कला प्रतीकवाद को अपनाती है जो उनकी आध्यात्मिक और सांस्कृतिक विरासत के साथ गहराई से मेल खाती है। पशु, पौधे और प्राकृतिक तत्व अक्सर केंद्र में रहते हैं, जो प्राकृतिक दुनिया और आध्यात्मिक क्षेत्र दोनों से जुड़ाव का प्रतीक हैं। इसके अलावा, जनजातीय पेंटिंग अक्सर जनजाति की आध्यात्मिक मान्यताओं के केंद्र में पूर्वजों, प्रकृति, आत्माओं या देवताओं की पूजा को उजागर करती हैं। पूर्वजों की पूजा स्वदेशी संस्कृतियों में प्रचलित है, जहां पूर्वजों को संरक्षक और मार्गदर्शक के रूप में सम्मानित किया जाता है जो जीवित लोगों के जीवन को प्रभावित करते रहते हैं। अब, कई जनजातियों को अपनी जीवनशैली खोने का खतरा है, खासकर जब युवा लोग अपनी जड़ों से दूर जा रहे हैं। कला इन जनजातियों के लिए यह सुनिश्चित करने का एक तरीका बन गई है कि उनका ज्ञान और कौशल बर्बाद न हो।

जनजातीय कला, विशेष रूप से उनकी पेंटिंग, स्वदेशी समुदायों की अनूठी विरासत और रीति-रिवाज़ों के संरक्षक के रूप में कार्य करती है। यह उनकी जीवनशैली को प्रतिबिंबित करने और उनकी मान्यताओं और सिद्धांतों के बारे में ज्ञान प्रदान करने वाले दर्पण के रूप में कार्य करता है। समाज में चल रहे तमाम किस्म के परिवर्तनों के बावजूद, आदिवासी कला भारतीय संस्कृति के विशिष्ट और मनोरम सार का प्रमाण बनी हुई है। जनजातीय कला का संरक्षण सुनिश्चित करना हमारे देश की सांस्कृतिक विरासत की समृद्ध परंपरा की रक्षा करने के समान है। ❑

Since 2005

MIT-SOG
MIT School of Government
Bharat's First School to Create Future Political Leaders

Rahul V. Karad
Initiator MIT-SOG,
National Legislators' Conference

ADMISSIONS OPEN - 2024-25

MPG
MA
Political Leadership
& Government

Bharat's First School to Create
Future Political Leaders Since 2005

Master's In Political Leadership & Government Highlights

- Interactive sessions with national-level leaders from Politics, Bureaucracy, Judiciary, Media Corporate & Social/Development organisations
- Experiential learning from the curriculum designed by leading academicians
- National Study Tour to Delhi NCR
- Thematic Workshops & Rural Immersion
- Field Visits to Gram Panchayats, Zilla Parishad, Municipal Corporation, State Legislative Assembly, Cooperatives & Non Governmental Organisations (NGOs)
- Multiple Internships on Election Survey/ Election Campaign, Constituency Mapping & Political Internship
- Curriculum covers Political Communication, Legislative Procedures, Psephology, Policy Studies, Constituency Development & Management
- 1st year classroom sessions on campus & 2nd year with internships & trainings off campus

++++++++ Upto 100% Scholarships ++++++++

GAIN THE SKILLS AND KNOWLEDGE TO SUCCEED IN THE WORLD OF POLITICS

SCAN TO APPLY

MIT-WPU
॥ विश्वशान्तिर्ध्रुवं ध्रुवा ॥
Since 1983
Dr. Vishwanath Karad
MIT WORLD PEACE UNIVERSITY | PUNE
TECHNOLOGY, RESEARCH, SOCIAL INNOVATION & PARTNERSHIPS

+91 20 7117 7137 admissions@mitwpu.edu.in
+91 91460 38947 mitwpu.edu.in
MIT-WPU, Kothrud, Pune

जनजातीय संस्कृति
वैश्विक प्रतिनिधित्व का सामर्थ्य

-हेमंत मेनन

भारत के जनजातीय समुदायों के कला रूप और दैनिक प्रथाएं पर्यावरण-अनुकूल जीवन जीने में मूल्यवान सीख प्रदान करती हैं और ये दर्शाती हैं कि किस प्रकार पारंपरिक ज्ञान और तकनीकें पर्यावरण के साथ अधिक धनिष्ठ संबंध स्थापित कर सकती हैं। उदाहरण के लिए, शिल्प में जैविक सामग्रियों का उपयोग, पवित्र उपवनों के माध्यम से स्थानीय वनस्पतियों और जीवों का संरक्षण, और टिकाऊ फसल कटाई पद्धतियाँ जीवन के एकीकृत दृष्टिकोण को उजागर करती हैं जो वैश्विक पर्यावरणीय कार्यनीतियों को प्रेरित कर सकती हैं।

भारत की जनजातीय कला पेंटिंग, बुनाई और नृत्य जैसी विविध कलात्मक अभिव्यक्तियों से समृद्ध हैं जो देश की प्राचीन सांस्कृतिक परंपराओं के लिए एक महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में कार्य करती हैं तथा जिसमें वैश्विक सांस्कृतिक संवाद के लिए पर्याप्त क्षमता मौजूद है। प्रकृति और सामुदायिक जीवन में गहराई से निहित कला के ये रूप स्थायी प्रथाओं और दार्शनिक मान्यताओं को दर्शाते हैं जो पारिस्थितिकीय संतुलन और सह-अस्तित्व पर ज़ोर देते हैं। जनजातीय कला का संरक्षण न केवल इन अद्वितीय सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों की सुरक्षा करता है बल्कि विश्व-स्तर पर जीवन जीने के एक स्थायी मॉडल को भी बढ़ावा देता है। नैतिक पर्यटन को एक साथ जोड़कर, बौद्धिक संपदा की रक्षा करके और वैश्विक साझेदारी को बढ़ावा देकर, हम विश्व मंच पर भारत की जनजातीय कला की निरंतर जीवंतता और प्रासंगिकता सुनिश्चित कर सकते हैं।

लेखक कला और संस्कृति पर एक नियमित स्तंभकार हैं और स्पिक मैके के राष्ट्रीय समन्वयक हैं। ई-मेल : hemanth@spicmacay.com

भारत की जनजातीय कला देश की सांस्कृतिक विविधता के समृद्ध चित्रपट (टेपेस्ट्री) को दर्शाती है, जिसमें प्रत्येक जनजातीय समुदाय अपनी अनूठी कलात्मक अभिव्यक्तियों और परंपराओं का योगदान देता है। इस कला में पेंटिंग, बुनाई, मिट्टी के बर्तन, धातुकर्म, लकड़ी का काम, संगीत और नृत्य जैसे विभिन्न माध्यम शामिल हैं, जिनसे भारत के प्राचीन सांस्कृतिक अतीत और वैश्विक सांस्कृतिक संवाद हेतु इसकी महत्वपूर्ण क्षमता को देखने के लिए व्यापक दृष्टि प्राप्त होती है।

भारत में जनजातीय कला पैतृक विरासतों के लिए गर्भनाल के रूप में कार्य करती है, जो प्रकृति में आध्यात्मिक मान्यताओं में और सामुदायिक जीवन के सार में गहराई से समाई हुई है। कला के इन रूपों को मुख्य रूप से शहरी प्रभावों से सापेक्ष रूप से अलग रखते हुए संरक्षित किया जाता है; साथ ही, व्यापक प्रदर्शन को सीमित करते हुए उनकी प्रामाणिकता की रक्षा की जाती है। इन कलारूपों में सबसे विशिष्ट हैं महाराष्ट्र की वारली पेंटिंग और त्रिपुरा की जनजातियों द्वारा किया गया जटिल बांस का काम। ये केवल सौंदर्य संबंधी कार्यकलाप नहीं हैं, बल्कि जनजातियों की जीवनशैली और लोकाचार में गहराई से अंतर्निहित हैं, जो प्रकृति और ब्रह्मांड के साथ उनके गहन संपर्क को समाहित करती हैं।

वारली कला विशेष रूप से मोनोक्रोमैटिक रूपांकनों और लयबद्ध ज्यामितीय पैटर्न के उपयोग के लिए प्रसिद्ध है जो सामाजिक समारोहों, फसलों और आदिवासियों की कॉसमोलोजी संबंधी कहानियों को बयां करती है। इस शैली में एक वृत्त, त्रिकोण और वर्ग का उपयोग कर प्रकृति के विभिन्न तत्वों को प्रतीकात्मक रूप से दर्शाया जाता है, और जनजातियों के उनके पर्यावरण के साथ गहरे संबंध को दिखाया जाता है। इसके विपरीत, त्रिपुरा का बांस शिल्प स्थानीय संसाधनों के टिकाऊ उपयोग को दर्शाता है, जहां बांस सिर्फ एक सामग्री नहीं बल्कि जीवन का आधार है। कारीगर इस बहुउपयोगी सामग्री से विभिन्न प्रकार के सामान बनाते हैं जिनमें टोकरियां, फर्नीचर और सजावटी सामान शामिल हैं। इनमें से प्रत्येक वस्तु आदिवासी समुदायों के पारिस्थितिकीय लोकाचार को प्रतिबिंबित करती है।

ये कलात्मक परंपराएं पीढ़ियों से चली आ रही हैं जो बुजुर्गों द्वारा जनजाति के युवा सदस्यों को सिखाई जाती हैं, जिससे उनकी सांस्कृतिक विरासत का अस्तित्व सुनिश्चित रहे। सामुदायिक त्यौहारों और अनुष्ठानों के माध्यम से, इन कला रूपों का उत्सव मनाया जाता है जिससे यह आदिवासी पहचान का अभिन्न अंग बने रहते हैं और जो भारत की स्वदेशी संस्कृतियों के सारतत्व को दर्शाते हैं।

गोंड पेंटिंग

प्रतीकवाद तथा प्रकृति और जीवन से संबंध

भारत में जनजातीय कला प्राचीन लोककथाओं और जनजातीय मिथकों से भरपूर है, जिनमें से प्रत्येक सृजन, अस्तित्व और प्रकृति के साथ सद्भाव में रहने की अपनी कहानी कहता है। कई जनजातीय कलाकृतियों के केंद्र में ऐसे रूपांकन हैं जो प्राकृतिक तत्वों, आध्यात्मिक मार्गदर्शकों और जनजातीय विद्या का प्रतीक हैं। उदाहरण के लिए, मध्य भारत की भील जनजाति कहानियों को दर्शाने के लिए डॉट और डैश का उपयोग करते हुए एक अलग तरह की शैली अपनाती हैं, जहाँ प्रत्येक डॉट बाजरे के एक दाने का प्रतिनिधित्व करता है, जो समृद्धि और उनके कृषक जीवन पद्धति से जुड़ाव का प्रतीक है।

इसी तरह से मध्य प्रदेश की गोंड पेंटिंग जीवंत और जटिल हैं, जो अक्सर प्रकृति के तत्वों के साथ जुड़े देवताओं, पुरुषों और जानवरों की कहानियों को चित्रित करती हैं। इन पेंटिंग्स में लोककथाओं के दृश्यों को चित्रित करने के लिए चमकीले रंगों और पैटर्न का उपयोग किया जाता है, जो प्रकृति की उदारता के प्रति जनजाति की श्रद्धा को उजागर करती हैं। लकड़ी का कोयला, गाय का गोबर, पत्तियों और रंगीन मिट्टी से बने प्राकृतिक रंगों का उपयोग न केवल उनकी स्थायी कलात्मक प्रथाओं को बल्कि पर्यावरण के साथ तालमेल बिठाकर रहने के उनके दर्शन को भी रेखांकित करता है।

जनजातीय कला में प्रतीकवाद केवल प्रभावशीलता से कहीं आगे है; जो शिक्षा और सांस्कृतिक निरंतरता के

लिए एक माध्यम के रूप में काम करता है। यह जनजातीय समुदायों में पहचान और निरंतरता की भावना को बढ़ावा देता है, प्रत्येक कलाकृति सामुदायिक ज्ञान और परंपराओं के भंडार के रूप में कार्य करती है। ये प्रतीक, जनजातियों के मूल्यों और शिक्षाओं को युवा पीढ़ी तक पहुंचाने में मदद करते हैं, जिससे यह सुनिश्चित होता है कि उनकी पैतृक बुद्धि और प्रथाएं विस्मृत न हों बल्कि आधुनिक युग में और अधिक उन्नत हों।

संगीत और नृत्य आदिवासी उत्सवों और अनुष्ठानों की जान हैं, जो कला के अन्य रूपों के साथ गहराई से जुड़े हुए हैं और जो भारत के आदिवासी समुदायों की सांस्कृतिक अभिव्यक्ति के लिए आवश्यक हैं। उदाहरण के लिए, झारखंड की संथाल जनजाति अपने लयबद्ध ढोल और लोक नृत्यों के लिए प्रसिद्ध है जो फसल, शिकार और त्यौहारों की गाथा सुनाते हैं। ये प्रदर्शन न केवल कलात्मक प्रदर्शन हैं, बल्कि सामाजिक ताने-बाने के महत्वपूर्ण तत्व भी हैं, जो उत्सव मनाने और अपने सांस्कृतिक मेलभाव को बनाए रखने के लिए समुदाय को एक साथ लाते हैं।

भील जनजाति ऊर्जा से परिपूर्ण नृत्य रूपों के माध्यम से अपनी सांस्कृतिक पहचान व्यक्त करती है जिसमें विस्तृत वेशभूषा और ओजपूर्ण गतिविधियां शामिल होती हैं, जो प्रमुख ऐतिहासिक और पौराणिक घटनाओं का प्रतीक हैं। ये नृत्य अक्सर वर्ष के विशिष्ट समय के दौरान किए जाते हैं और इसमें मनोरंजन और अनुष्ठानिक महत्व का दोहरा कार्य होता है, जो आदिवासी विद्या और विरासत को और अधिक मज़बूत करता है। पूर्वोत्तर की नगा जनजातियाँ अपने लोकगीतों और पारंपरिक नृत्यों पर गर्व करती हैं, जो हॉर्नबिल महोत्सव जैसे उनके त्यौहारों का एक अभिन्न अंग हैं। ये गीत और नृत्य ऐतिहासिक महत्व से ओत-प्रोत हैं और पीढ़ी-दर-पीढ़ी कहानियों और परंपराओं को आगे बढ़ाने का एक साधन हैं। संगीत में आमतौर पर स्थानीय रूप से प्राप्त सामग्रियों से बने वाद्ययंत्र शामिल होते हैं, जो जनजाति की संसाधनशीलता और उनका भूमि से जुड़ाव को दर्शाते हैं।

जनजातियों की सांस्कृतिक पहचान को बनाए रखने के लिए इन संगीत परंपराओं का संरक्षण महत्वपूर्ण है। वे अतिक्रमण करने वाले आधुनिक प्रभावों के विरुद्ध प्रतिरोध का एक रूप प्रस्तुत करते हैं और सामुदायिक गौरव और एकजुटता के लिए एक सम्मिलन बिंदु के रूप में कार्य करते हैं। इसके अतिरिक्त, ये सांस्कृतिक अभिव्यक्तियां जनजाति के युवा सदस्यों को उनकी विरासत से जुड़ने का अवसर प्रदान करती हैं, जिससे कि यह सुनिश्चित हो कि ये सदियों पुरानी परंपराएँ युगों तक गूंजती रहें और अपनाई जाती रहें।

दार्शनिक आधार और वैश्विक प्रासंगिकता

भारत में जनजातीय कला की दार्शनिक नींव गहन रूप से पारिस्थितिकीय है, जो स्थिरता और न्यूनतम पर्यावरणीय प्रभाव पर ज़ोर देती है। ये प्रथाएं प्रकृति के प्रति गहरा सम्मान दर्शाती हैं, अक्सर अपने कलात्मक कार्यों में स्थानीय रूप से प्राप्त सामग्रियों और प्राकृतिक रंगों का उपयोग करती हैं। आदिवासी समुदायों और उनके प्राकृतिक परिवेश के बीच घनिष्ठ संबंध को देखते हुए स्थिरता का यह लोकाचार सिर्फ एक सांस्कृतिक प्राथमिकता नहीं है, बल्कि एक आवश्यकता भी है।

इन प्रथाओं की वैश्विक प्रासंगिकता को कम करके नहीं आंका जा सकता है, विशेष रूप से पर्यावरणीय मुद्दों और स्थिर जीवन की खोज से जूझ रही दुनिया में। भारत के जनजातीय समुदायों के कला रूप और दैनिक प्रथाएं पर्यावरण-अनुकूल जीवन जीने में मूल्यवान सीख प्रदान करती हैं और ये दर्शाती हैं कि किस प्रकार पारंपरिक ज्ञान और तकनीकें पर्यावरण के साथ अधिक घनिष्ठ संबंध स्थापित कर सकती हैं। उदाहरण के लिए, शिल्प में जैविक सामग्रियों का उपयोग, पवित्र उपवनों के माध्यम से स्थानीय वनस्पतियों और जीवों का संरक्षण, और टिकाऊ फसल कटाई पद्धतियाँ जीवन के एकीकृत दृष्टिकोण को उजागर करती

हार्नबिल महोत्सव

हैं जो वैश्विक पर्यावरणीय कार्यनीतियों को प्रेरित कर सकती हैं।

इसके अलावा, सह-अस्तित्व और सभी जीवन रूपों के लिए सम्मान का जनजातीय दर्शन आज के संदर्भ में पूर्ण रूप से प्रासंगिक है, जहां पारिस्थितिकीय असंतुलन और संसाधनों की कमी चिंता का विषय है। भारत के जनजातीय समुदाय, अपनी कला और जीवनशैली के माध्यम से, मानवीय आवश्यकताओं और पर्यावरणीय प्रबंधन के बीच संतुलन का समर्थन करते हैं, जो स्थायी और सतत जीवन के लिए एक रूपरेखा प्रदान करते हैं, जिससे बाकी दुनिया सीख सकती है।

ये दार्शनिक आधार केवल सैद्धांतिक नहीं हैं बल्कि इन समुदायों के दैनिक जीवन के व्यावहारिक अनुप्रयोगों में अंतर्निहित हैं। वे वैश्विक समुदाय के लिए एक मॉडल के रूप में काम करते हैं कि किस प्रकार पारिस्थितिकीय संतुलन और सांस्कृतिक समृद्धि बनाए रखी जा सकती है। इस प्रकार, इन सिद्धांतों को समझने और एकीकृत करने से दुनिया भर में अधिक स्थिर पद्धतियों को बढ़ावा मिल सकता है, जिससे आदिवासी कला न केवल एक सांस्कृतिक खजाना बन जाएगी बल्कि स्थिरता पर वैश्विक वार्ता के लिए एक महत्वपूर्ण तत्व के रूप में भी सामने आएगी।

बौद्धिक संपदाः जनजातीय कला की सुरक्षा

जनजातीय कला के बौद्धिक संपदा (आईपी) अधिकारों की रक्षा करना यह सुनिश्चित करने के लिए महत्वपूर्ण है कि जनजातीय समुदायों को उनके सांस्कृतिक योगदान के लिए मान्यता दी जाए और पुरस्कृत किया जाए। यह विशेष रूप से महत्वपूर्ण है क्योंकि जनजातीय कला रूप समुदायों की सांस्कृतिक पहचान के भीतर गहराई से अंतर्निहित हैं और व्यापक बाजारों के संपर्क में आने पर अक्सर शोषण के प्रभाव के प्रति संवेदनशील होते हैं। जनजातीय डिज़ाइनों, रूपांकनों और तकनीकों के अनाधिकृत उपयोग और विनियोजन को रोकने के लिए आईपी अधिकारों को स्थापित करना और लागू करना आवश्यक है।

वारली पेंटिंग जैसी जनजातीय कलाओं के लिए भौगोलिक संकेत जीआई टैग की शुरुआत, इन सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों की सुरक्षा में एक प्रभावी उपाय साबित हुई है। जीआई टैग इन कलाकृतियों की उत्पत्ति को प्रमाणित करने में मदद करते हैं, गलत बयानी और शोषण को रोकते हैं और मूल रचनाकारों के लिए आर्थिक लाभ को बढ़ावा देते हैं। इस तरह की पहल न केवल कलात्मक अभिव्यक्तियों की रक्षा करती है बल्कि एक कानूनी ढांचा भी प्रदान करती है जो आदिवासी समुदायों के आर्थिक कल्याण में मदद करती है।

इसके अलावा, आईपी अधिकारों का प्रवर्तन आदिवासी कला की प्रामाणिकता को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह सुनिश्चित करता है कि राष्ट्रीय और वैश्विक बाजारों में जगह मिलने पर सांस्कृतिक अभिव्यक्तियां कमजोर या गलत तरीके से प्रस्तुत नहीं की जाएंगी। यह उस दुनिया में विशेष रूप से महत्वपूर्ण है जहां सांस्कृतिक एकरूपता स्वदेशी संस्कृतियों की विविधता और समृद्धि के लिए खतरा पैदा करती है।

जनजातीय कला के लिए आईपी ढांचे को मज़बूत करने की पहल के साथ-साथ जनजातीय कलाकारों के

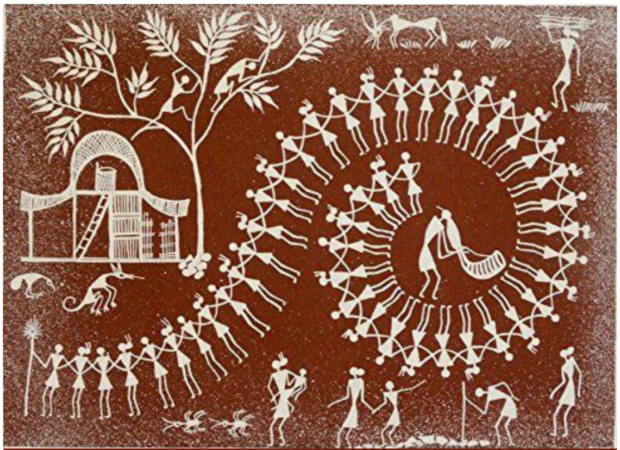

वारली पेंटिंग

वारली जनजाति, महाराष्ट्र

वारली कला अब विश्व-स्तर पर मान्यता प्राप्त कर चुकी है, यह जितनी सरल है, उतनी ही जटिल भी है और यही बात इसे अद्वितीय बनाती है। मिट्टी की दीवारों पर सफेद रंग से चित्रित, जिसमें कभी-कभी लाल और पीले रंग के बिंदु होते हैं, वारली कला जनजाति की पारंपरिक जीवन शैली को दर्शाती है। केवल एक वृत्त, एक त्रिभुज और एक वर्ग का उपयोग करते हुए, मोनोसिलैबिक अनुष्ठान दीवार चित्रों में अक्सर शिकार, मछलियों, नृत्यों, पेड़ों और जानवरों के विषय होते हैं।

वारली चित्रकला में दर्शाए गए अनोखे पहलुओं में से एक है तरपा नृत्य। तरपा, एक तुरही जैसा वाद्य यंत्र है, जिसे अलग-अलग गाँव के पुरुष बारी-बारी से बजाते हैं। पुरुष और महिलाएं अपने हाथों को आपस में जोड़कर तरपा बजाने वाले के चारों ओर एक घेरा बनाकर घूमते है।

वारली चित्रकला में गेरू (लाल माटी), चावल पाउडर पेस्ट (तंदुल पिठ), गोबर पेस्ट (शेन), कोयला पाउडर, प्राकृतिक गोंद और पेड़ों से चिपकने वाले पदार्थों का इस्तेमाल पारंपरिक रंगों के रूप में किया जाता है, लेकिन आजकल आधुनिक रंगों का इस्तेमाल भी आधार सामग्री के रूप में किया जाता है।

बीच उनके अधिकारों और उनकी सांस्कृतिक विरासत की रक्षा के महत्व के बारे में जागरूकता और शिक्षा बढ़ाने की आवश्यकता है। यह उन्हें सांस्कृतिक वाणिज्य के जटिल परिदृश्य को नेविगेट करने के लिए सशक्त बना सकता है, और वे अपने कलात्मक आउटपुट पर नियंत्रण बनाए रखने और अपनी सांस्कृतिक विरासत का पूरा लाभ प्राप्त करना सुनिश्चित कर सकते हैं।

जनजातीय कला की बौद्धिक संपदा की रक्षा करके, हम न केवल इन अद्वितीय सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों की रक्षा करते हैं बल्कि यह भी सुनिश्चित करते हैं कि उनके बाद आने वाले समुदायों को मान्यता दी जाए और उन्हें पर्याप्त मुआवज़ा दिया जाए। यह न केवल जनजातियों की आर्थिक स्थिरता में बल्कि उनकी कलात्मक परंपराओं की सांस्कृतिक अखंडता और निरंतरता में भी योगदान देता है।

नैतिक पर्यटनः सांस्कृतिक स्थिरता का मार्ग

नैतिक पर्यटन, आदिवासी समुदायों के सांस्कृतिक और प्राकृतिक वातावरण के साथ जुड़ने और उसे संरक्षित करने के लिए एक सम्मानजनक और स्थिर दृष्टिकोण प्रदान करता है। पर्यटन का यह रूप जनजातीय समुदायों की सांस्कृतिक परंपराओं और पारिस्थितिकीय वास्तविकताओं के प्रति संवेदनशील बातचीत को प्रोत्साहित करता है।

नैतिक पर्यटन के एक मॉडल में पर्यटकों का कार्यशालाओं और गाँव के दौरे जैसे सांस्कृतिक अनुभवों में भाग लेना शामिल है, जो जनजाति की जीवनशैली और रीति-रिवाजों का सम्मान करते हुए आयोजित किए जाते हैं। ये अनुभव न केवल पर्यटकों को जनजातियों की समृद्ध सांस्कृतिक टेपेस्ट्री के बारे में शिक्षित करते हैं बल्कि आर्थिक अवसर भी पैदा करते हैं जिससे आदिवासी समुदायों को सीधे लाभ होता है। यह वैश्वीकरण और सांस्कृतिक विलयन की ताकतों के प्रति संतुलन के रूप में भी कार्य कर सकता है, इससे सांस्कृतिक आदान-प्रदान का एक स्थायी मॉडल मिल सकता है जिससे आगंतुकों और मेज़बान समुदायों दोनों को लाभ होता है।

नैतिक पर्यटन को वास्तव में प्रभावी बनाने के लिए इसे जनजातीय समुदायों की पूर्ण भागीदारी और सहमति से लागू किया जाना चाहिए। इसमें यह सुनिश्चित करना शामिल है कि समुदायों का इस पर नियंत्रण हो कि उनकी संस्कृतियां बाहरी लोगों के साथ कैसे प्रस्तुत और साझा की जाती हैं और उन्हें पर्यटन से प्राप्त आर्थिक लाभों का उचित हिस्सा प्राप्त हो। इस तरह की पहल न केवल पर्यटक अनुभव को बढ़ाती है बल्कि आदिवासी समुदायों की सांस्कृतिक और आर्थिक स्थिरता में भी योगदान देती है जिससे वे पर्यटन उद्योग में सक्रिय भागीदार और लाभार्थी बनते हैं।

हालांकि जनजातीय कला का संरक्षण नैतिक जीवन में चिरस्थायी अंतर्दृष्टि प्रदान करता है, इन प्रयासों में शामिल चुनौतियों को पहचानना महत्वपूर्ण है। जनजातीय जीवनशैली का रूमानीकरण अक्सर आधुनिक प्रभावों और वैश्वीकरण के कारण जनजातियों द्वारा सामना की जाने वाली जटिलताओं को नज़रअंदाज कर देता है। सांस्कृतिक विलयन का भी खतरा है क्योंकि आदिवासी कला का व्यवसायीकरण हो रहा है, संभावित रूप से इसकी प्रामाणिकता खत्म हो रही है और यह सांस्कृतिक महत्व के बिना केवल सौंदर्य मूल्य तक सीमित हो गई है।

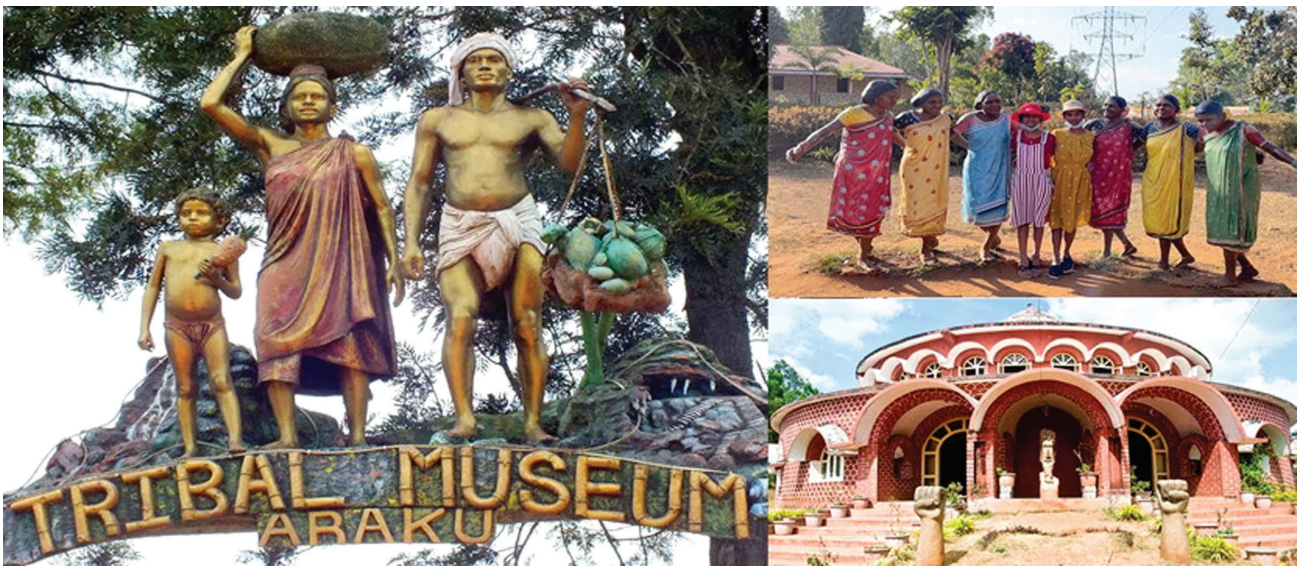

जनजातीय म्यूज़ियम

इसके अलावा, आदिवासी कलाकारों की आर्थिक स्थिरता अनिश्चित हो सकती है। लगातार मांग या सहयोग के बिना, कई कलाकारों को अपने पारंपरिक शिल्प को जारी रखना मुश्किल हो सकता है, खासकर उन क्षेत्रों में जहां पर्यटन छिटपुट या न्यूनतम है।

जीवंत संग्रहालय जनजातीय संस्कृति, कला और परंपराओं के संरक्षण और प्रदर्शन के लिए गतिशील मंच के रूप में कार्य करते हैं। पारंपरिक संग्रहालयों के विपरीत, जो अक्सर स्थिर प्रदर्शन प्रस्तुत करते हैं, जीवंत संग्रहालय इंटरेक्टिव अनुभव प्रदान करते हैं जो आगंतुकों को आदिवासी समुदायों की सांस्कृतिक प्रथाओं और दैनिक जीवन की गतिविधियों से सीधे जुड़ने की अनुमति देते हैं। ये संग्रहालय अतीत और वर्तमान के बीच की खाई को पाटते हुए, सांस्कृतिक शिक्षा और प्रशंसा के लिए एक अनूठा अवसर प्रदान करते हैं।

भारत में, तमिलनाडु में दक्षिणचित्र और मध्य प्रदेश में जनजातीय संग्रहालय जैसे उदाहरण जीवंत संग्रहालयों के सफल कार्यान्वयन को दर्शाते हैं। दक्षिणचित्र ने पारंपरिक घरों, कलाकृतियों और शिल्प सहित दक्षिण भारतीय आदिवासी समुदायों की सांस्कृतिक विरासत को प्रदर्शित करने के लिए समर्पित स्थान बनाए हैं। यह सेटअप न केवल आगंतुकों को जनजातीय संस्कृतियों को समझने के लिए एक समृद्ध संदर्भ प्रदान करता है बल्कि उन स्थापत्य शैलियों और कारीगर कौशल के संरक्षण में भी मदद करता है जिनके लुप्त होने का खतरा है।

इसी तरह, मध्य प्रदेश में जनजातीय संग्रहालय गोंड और भील जनजातियों के जीवन के बारे में जानकारी प्रदान करता है। विभिन्न प्रकार की कलाकृतियों को प्रदर्शित करके और आदिवासी कारीगरों के साथ इंटरेक्टिव सत्र की मेज़बानी करके यह संग्रहालय मध्य भारत के आदिवासी समुदायों की समृद्ध सांस्कृतिक टेपेस्ट्री के बारे में जनता को शिक्षित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। ये संग्रहालय कलाकृतियों को संरक्षित करने के अलावा और भी बहुत कुछ करते हैं; वे परंपराओं को जीवित रखते हैं, रोज़गार के अवसर प्रदान करते हैं, और यह सुनिश्चित करते हैं कि ज्ञान भावी पीढ़ियों तक पहुँचाया जाए।

भविष्य की दशा-दिशा

भारत में जनजातीय कला न केवल देश की सांस्कृतिक विविधता का प्रतिबिंब है, बल्कि इसकी समृद्ध ऐतिहासिक विरासत का एक जीवंत प्रमाण भी है। जैसे-जैसे हम इन कला रूपों को समझने में गहराई से उतरते हैं, वैसे-वैसे हम अर्थ की परतों को हटाते जाते हैं जो भारत के आदिवासी समुदायों और उनके पर्यावरण, उनकी आध्यात्मिक मान्यताओं और उनकी सामाजिक संरचनाओं के बीच गहरे संबंध को उजागर करते हैं। इन कलारूपों का संरक्षण न केवल सांस्कृतिक विविधता को बनाए रखने के लिए बल्कि वैश्विक समुदाय को स्थायी और नैतिक जीवन प्रथाओं के बारे में शिक्षित और समृद्ध करने के लिए भी महत्वपूर्ण है।

तेज़ी से सांस्कृतिक समरूपीकरण की ओर बढ़ रही दुनिया में, जनजातीय कला की विशिष्टता हमें सांस्कृतिक संरक्षण और प्रशंसा के प्रति हमारे दृष्टिकोण पर पुनर्विचार करने की चुनौती देती है। यह हमसे ऐसी और अधिक समावेशी नीतियों को अपनाने का आग्रह करती है जो इन अनूठी परंपराओं की सुरक्षा का समर्थन करे। सरकारों, सांस्कृतिक संगठनों और समुदायों को आदिवासी कलारूपों का संरक्षण और संवर्धन करने वाली रूपरेखा बनाने के लिए सहयोग करना चाहिए। इसमें बौद्धिक संपदा कानूनों को मज़बूत करना, सब्सिडी और अनुदान के माध्यम से स्थानीय कारीगरों का समर्थन करना और शिक्षा तथा मीडिया के माध्यम से सार्वजनिक जागरूकता बढ़ाना शामिल है।

इसके अलावा, वैश्विक साझेदारी को बढ़ावा देने से इन संस्कृतियों को संरक्षित करने के प्रयासों को बढ़ाया जा सकता है। अंतर्राष्ट्रीय सांस्कृतिक आदान-प्रदान कार्यक्रम, प्रदर्शनियां और सहयोग जनजातीय कला को व्यापक दर्शकों तक पहुँचा सकते हैं, यह सुनिश्चित करते हुए कि ये प्रथाएँ न केवल वित्तीय रूप से कायम हैं बल्कि वैश्विक सांस्कृतिक मोज़ेक (पच्चीकारी) के आवश्यक तत्वों के रूप में भी इन्हें सराहा जाता है।

जैसे-जैसे हम आगे बढ़ रहे हैं, आइए हम इस असाधारण सांस्कृतिक विरासत के संरक्षक बनने के लिए प्रतिबद्ध हों। नैतिक पर्यटन को बढ़ावा देकर, जीवंत संग्रहालयों का समर्थन करके और बौद्धिक संपदा अधिकारों का सम्मान करके, हम यह सुनिश्चित करने में मदद कर सकते हैं कि आदिवासी कला की जीवंत टेपेस्ट्री (चित्रपट) भविष्य की पीढ़ियों को प्रेरणा देती रहे और उनका ज्ञानवर्धन करती रहे। सामूहिक प्रयास और साझा ज़िम्मेदारी के माध्यम से, आदिवासी कला केवल प्रशंसा का विषय बनने से आगे बढ़कर सांस्कृतिक स्थिरता और वैश्विक विरासत संरक्षण की आधारशिला बन सकती है।

इन कार्यनीतियों को एकीकृत करके, हम न केवल भारत की जनजातीय कला के संरक्षण और संवर्धन में सक्रिय रूप से भाग लेते हैं बल्कि यह सुनिश्चित करते हैं कि यह हमारी सामूहिक वैश्विक विरासत का एक जीवंत और अनमोल हिस्सा बनी रहें। ❑

कृषि महोत्सव : आदिवासी संस्कृति का अभिन्न अंग

-डॉ. जगदीप सक्सेना

अपनी सांस्कृतिक विरासत के एक हिस्से के रूप में, सभी जनजातियां देवताओं को प्रसन्न करने और आशीर्वाद के लिए मां प्रकृति का सम्मान करने के लिए विभिन्न त्यौहार मनाती हैं। कृषि त्यौहार भी इसी का हिस्सा हैं। अधिकांश कृषि त्यौहार साल में दो बार मनाए जाते हैं, एक खेती की शुरुआत में और दूसरा फसल की कटाई के समय। आमतौर पर ये सामुदायिक उत्सव होते हैं जिसमें पारंपरिक भोजन, संगीत, नृत्य आदि के साथ देवताओं की पूजा की जाती है। आजकल पर्यटकों का भी इन समारोहों में गर्मजोशी से स्वागत किया जाता है जहां वे भारत की समृद्ध और विविध आदिवासी संस्कृति का अनुभव करते हैं।

भारत में 730 से ज्यादा अनुसूचित जनजातियां हैं, जिनमें से हर एक की अपनी संस्कृति, रीति-रिवाज, भाषा और जीवनशैली है। ये खास समुदाय मुख्य रूप से देश भर के जंगलों और पहाड़ी इलाकों में रहते हैं, इसलिए इन्हें अक्सर 'आदिवासी' कहा जाता है। जहां वे रहते हैं, उसके आधार पर आदिवासी समुदायों के पास भोजन प्राप्त करने के अलग-अलग तरीके होते हैं जैसे शिकार करना, खेती करना, मछली पकड़ना या जंगल से इकट्ठा करना। सदियों पुरानी परंपरा के अनुसार, वे अपनी ज़मीन के साथ गहरा रिश्ता बनाए रखते हैं, टिकाऊ खेती के तरीकों का पालन करते हैं और प्राकृतिक तत्वों जैसे सूरज, नदियां, मिट्टी, पहाड़ आदि को बहुत सम्मान देते हैं।

अपनी सांस्कृतिक विरासत के एक हिस्से के रूप में, सभी जनजातियां देवताओं को प्रसन्न करने और आशीर्वाद के लिए मां प्रकृति का सम्मान करने के लिए विभिन्न त्यौहार मनाती हैं। विभिन्न कृषि गतिविधियां, जैसे बुवाई,

लेखक भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली में प्रधान संपादक रह चुके हैं । ई-मेल : jagdeepsaxena@yahoo.com

फसलों की देखभाल, कटाई आदि, अपने सर्वोत्तम परिणामों के लिए प्रकृति/मौसम पर निर्भर हैं। इसलिए मौसम की स्थिति में कोई भी प्रतिकूलता प्राचीन कृषि समाजों के लिए उनके अस्तित्व और जीविका के लिए एक बड़ी चुनौती थी। अपनी फसलों को किसी भी आपदा से सुरक्षित रखने के लिए, उन्होंने कृषि क्षेत्रों और संबंधित देवताओं की पूजा गीत, नृत्य और विभिन्न प्रसाद के साथ करना शुरू कर दिया। समय के साथ, विभिन्न आदिवासी समाजों में मां प्रकृति की संतुष्टि के लिए विविध अनुष्ठान और परंपराएं जन्म लेने लगीं। विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में जनजातियों द्वारा मनाए जाने वाले कृषि त्यौहार इन लोकप्रिय मान्यताओं और अनुष्ठानों से निकले हैं।

अधिकांश कृषि त्यौहार साल में दो बार मनाए जाते हैं, एक खेती की शुरुआत में और दूसरा फसल की कटाई के समय। आमतौर पर ये सामुदायिक उत्सव होते हैं जिसमें पारंपरिक भोजन, संगीत, नृत्य आदि के साथ देवताओं की पूजा की जाती है। आजकल पर्यटकों का भी इन समारोहों में गर्मजोशी से स्वागत किया जाता है जहां वे भारत की समृद्ध और विविध आदिवासी संस्कृति का अनुभव करते हैं। उत्तर में जम्मू और कश्मीर से लेकर दक्षिण में केरल, पश्चिम में गुजरात और पूर्व में मणिपुर तक, राज्यों के हर कोने में आदिवासी कृषि त्यौहार मनाए जाते हैं। ऐसे त्यौहार अंडमान और निकोबार द्वीप समूह, दमन और दीव और लक्षद्वीप में भी आदिवासी संस्कृति का हिस्सा हैं।

जनजातियां, परंपराएं और रुझान

भारत का हृदय स्थल मध्य प्रदेश 45 से ज्यादा जनजातियों का घर है जो इसकी सांस्कृतिक विविधता और जीवंतता को बढ़ाते हैं। भील राज्य की सबसे ज्यादा आबादी वाली जनजाति है, उसके बाद गोंड, कोल, कोरकू, सहरिया और बैगा आते हैं। कुछ कृषि त्यौहार कुछ जनजातियों द्वारा सामूहिक रूप से मनाए जाते हैं, जबकि कुछ आयोजनों में एक जनजाति की अलग पहचान होती है। भगोरिया हाट या भगोरिया आदिवासी त्यौहार हर साल मार्च के महीने में भील और भीलाला जनजातियों द्वारा मनाया जाता है। मूल रूप से इस त्यौहार में खेतों में फ़सल कटने का जश्न मनाया जाता है। यह इस क्षेत्र के सबसे पुराने त्यौहारों में से एक है जिसे झाबुआ, धार, अलीराजपुर और खरगोन क्षेत्रों में काफ़ी पसंद किया जाता है। नृत्य, संगीत और रंग-बिरंगे परिधानों के अलावा, भगोरिया अपने अनोखे हाट बाज़ार के लिए प्रसिद्ध है जहाँ आप चांदी के बेहतरीन आदिवासी आभूषण खरीद सकते हैं। बड़ी संख्या में युवा लड़के और लड़कियां अपने पसंदीदा जीवनसाथी चुनने के लिए 'स्वयंवर' की अनूठी परंपरा में भाग लेने के लिए अपने सबसे अच्छे परिधानों में इस आयोजन में शामिल होते हैं। जोड़े अपना साथी चुनने के बाद भाग जाते हैं और वापस आने पर जनजाति की निर्धारित रस्में निभाने के बाद उन्हें पति-पत्नी के रूप में स्वीकार किया जाता है। भावी वर-वधू द्वारा विवाह हेतु सहमति व्यक्त करने के लिए एक-दूसरे के चेहरे पर गुलाल लगाने का रिवाज़ हैं।

करमा या करम मध्य प्रदेश, झारखंड, ओडिशा, छत्तीसगढ़, पश्चिम बंगाल, बिहार और असम की जनजातियों के बीच बड़े पैमाने पर मनाया जाने वाला त्यौहार है। यह त्यौहार अच्छी फसल और स्वास्थ्य के लिए करम-भगवान/ईश्वर के आशीर्वाद हेतु पूजा करने के लिए समर्पित है। मुंडा, हो, उरांव, बागल, बैगा, खारिया, कुड़मी, लोहरा और कोरवा प्रमुख जनजातियाँ हैं जो इसे हिंदू महीने 'भादों' (अगस्त-सितंबर) में 'पूर्णिमा' (पूर्णिमा के 11वें दिन') एकादशी को मनाते हैं। करमा त्यौहार के अनुष्ठानों की जड़ें खेती से गहराई से जुड़ी है। छोटी लड़कियां एक टोकरी में नौ प्रकार की फसलों के बीज बोती हैं और 7-9 दिनों तक इसकी देखभाल करती हैं। बाद में इन पौधों को देवताओं को अर्पित किया जाता है। त्यौहार से पहले, ग्रामीण करम के पेड़ की शाखाओं को इकट्ठा करने के लिए जुलूस के रूप में पास के जंगल में जाते हैं, जिन्हें पूजा के लिए सामुदायिक स्थानों पर प्रत्यारोपित किया जाता है। आमतौर पर, छोटी लड़कियाँ पूरे रास्ते में गाते और नाचते हुए पेड़ की शाखाओं को ले जाती हैं। अविवाहित लड़कियां पूजा के दिन उपवास रखती हैं। उनका मानना है कि इससे पूरे साल अच्छी फसल होगी और उन्हें अच्छा पति भी मिलेगा! कर्मा त्यौहार यह संदेश देता है कि पर्यावरण को बनाए रखने वाले पेड़ों की पूजा की जानी चाहिए, उन्हें बचाया जाना चाहिए और अधिक से अधिक लगाया जाना चाहिए।

'हरेली' छत्तीसगढ़ का एक बहुत लोकप्रिय आदिवासी त्यौहार है जो सामान्य रूप से फसल, पेड़ों और हरियाली को समर्पित है। यह मुख्य रूप से गोंड जनजाति द्वारा 'श्रावण' महीने (जुलाई-अगस्त) में अमावस्या के दिन बहुत धूमधाम से मनाया जाता है। अच्छी मानसून और भरपूर फसल का आशीर्वाद पाने के लिए इस त्यौहार के दौरान देवी 'कुटकी दाई' की पूजा की जाती है। किसान अपने-अपने खेतों में भेलवा वृक्ष की शाखाएं रखकर फसलों की सुरक्षा की प्रार्थना करते हैं। वे नीम के पेड़ के औषधीय गुणों तथा बीमारियों और कीड़ों को दूर करने की शक्ति के कारण इसकी शाखाओं को अपने घरों के प्रवेशद्वार पर भी लटकाते हैं। हरेली त्यौहार को 'पाट जात्रा' अनुष्ठान द्वारा भी चिह्नित किया जाता है जिसमें साल के पेड़ की लकड़ी की पूजा की जाती है। स्थानीय रूप से 'थुरलू कोटला'

या 'टीका पाटा' के नाम से जानी जाने वाली साल की लकड़ी जंगल से एकत्र की जाती है और विभिन्न पारंपरिक अनुष्ठानों के माध्यम से पूजा की जाती है। लकड़ी आमतौर पर बस्तर क्षेत्र के माचकोट या बिलोरी जंगल से एकत्र की जाती है और जगदलपुर शहर में दंतेश्वरी मंदिर के सामने अनुष्ठान किया जाता है। पूजा के बाद, साल की लकड़ी का उपयोग हथौड़ा आदि औज़ार बनाने के लिए किया जाता है, और बाद में, इन औजारों का उपयोग रथ बनाने के लिए किया जाता है जिसे आदिवासियों द्वारा नवरात्रि के नौ दिनों के दौरान खींचा जाता है।

पैट जात्रा आदिवासी लोगों के जीवन में लकड़ी और जंगलों के महत्व का सम्मान करने का एक तरीका है। उत्तराखंड में हरेला त्यौहार लगभग हरेली की तर्ज पर ही बुआई के मौसम की शुरुआत को चिह्नित करने के लिए मनाया जाता है। हरेला शब्द का अनुवाद स्थानीय भाषा में 'हरियाली का दिन होता है, जो श्रावण यानी जुलाई के महीने में मनाए जाने वाले कृषि त्यौहार के रूप में इसके महत्व को दर्शाता है। स्थानीय किसान इसे अपने खेतों में बुआई चक्र शुरू करने के लिए शुभ दिन मानते हैं। एक अनुष्ठान के रूप में, परिवार का मुखिया त्यौहार से 10 दिन पहले पत्तियों या बांस की छड़ियों से बने कटोरे में पांच से सात प्रकार के बीज मक्का, तिल, काले चने, सरसों आदि बोता है। हरेला के दिन, आगामी खेती के मौसम के लिए आशीर्वाद मांगने के लिए भगवान शिव और देवी पार्वती को पौधे चढ़ाए जाते हैं। पूजा के बाद किसान अपने खेतों में बीज बोना शुरू करते हैं। हाल ही में, लोगों ने क्षेत्र में हरियाली बढ़ाने के लिए बड़े पैमाने पर सैंपलिंग के इस अवसर का लाभ उठाया है। परंपरागत रूप से, हरेला पर्यावरण संरक्षण और प्रकृति के साथ मनुष्यों के जुड़ाव के उत्सव के लिए समर्पित एक त्यौहार भी है। कुमाऊं क्षेत्र में इसकी अत्यधिक लोकप्रियता के अलावा, हरेला को उत्तराखंड के गढ़वाल के कुछ क्षेत्रों में मोल संक्रांति या राई सागरन के रूप में मनाया जाता है। हरेला हिमाचल प्रदेश के कांगड़ा, शिमला और सिरमौर क्षेत्रों में हरियाली या रियाली के नाम से और जुब्बल तथा किन्नौर में दखरैल के नाम से लोकप्रिय है।

खेती, उत्सव और धूमधाम

श्रीकाकुलम, आंध्र प्रदेश के सीतामपेटा मंडल आदिवासी क्षेत्रों में किए गए एक अध्ययन से पता चलता है कि आदिवासी ज्यादातर त्यौहार किसी खास मौसम में उगाई जाने वाली फ़सल के संबंध में और साल भर मनाते हैं। सवारा और जटापू इस क्षेत्र की दो प्रमुख जनजातियां हैं जो मुख्य रूप से खेती और आजीविका के लिए जंगलों से उपज इकट्ठा करने में लगी हुई हैं। ज्यादातर त्यौहारों में आदिवासी कृषि और वन खनन उत्पादों के साथ अपने पारंपरिक देवताओं की पूजा करते हैं। जनवरी में, आदिवासी मकर संक्रांति को अपने स्वयं के अनुष्ठानों और रीति-रिवाज़ों के साथ पारंपरिक 'लाल चने का सप्ताह उत्सव' के रूप में मनाते हैं। लाल चने की नई कटी फ़सल को सबसे पहले भगवान को प्रार्थना के साथ चढ़ाया जाता है और फिर परिवार के लिए पकाया जाता है। आदिवासी फरवरी के महीने में शिवरात्रि को फूलों के त्यौहार के रूप में मनाते हैं, जिसे स्थानीय रूप से 'पूला पंडगा' कहा जाता है। त्यौहार के दौरान आदिवासी देवी की पूजा के लिए जंगल से सभी प्रकार के फूल इकट्ठा करते हैं। उसके बाद, फूलों का उपयोग व्यक्तिगत और व्यावसायिक उद्देश्यों के लिए किया जाता है। मार्च के महीने में फ़सल के बीज और इमली का त्यौहार मनाया जाता है। वे अप्रैल में अभिभावक समारोह के रूप में धरती, जंगल और पानी की भी पूजा करते हैं। इन प्राकृतिक तत्वों के कल्याण के लिए प्रार्थना और अनुष्ठान किए जाते हैं जो उनके अस्तित्व के लिए अभिन्न अंग हैं। आदिवासी मई में बुवाई और खेती से पहले बीज उत्सव मनाते हैं। कृषि बर्तनों और औजारों की पूजा की जाती है और देवी-देवताओं को चढ़ाने के लिए प्रत्येक परिवार से बीज एकत्र किए जाते हैं। बाद में, किसानों को बुवाई और खेती शुरू करने के लिए भगवान की अनुमति के प्रतीक के रूप में बीज वितरित किए जाते हैं। जून के महीने में दो त्यौहार मुख्य रूप से आम की नई फसल की खुशी में मनाए जाते हैं। जुलाई में मोक्कलू त्यौहार के दौरान आदिवासी फसल रोगों को रोकने और उत्पादकता बढ़ाने के लिए अपने खेतों से अवांछित पौधों

करम

करम पर्व सृष्टि का पर्व है। आदिवासी प्रकृति को ही आराध्य देव और भगवान मानते हैं। आदिवासी समुदाय का मानना है कि करमा का वृक्ष 24 घंटा ऑक्सीजन देता है यही कारण है कि आदिवासी करम वृक्ष को आराध्य देव के रूप में मानते हैं और उसे अपने आंगन या घर में लाकर उसकी पूजा करते हैं। प्रकृति के साथ आदिवासियों का गहरा संबंध है।

करम उत्सव

बिहान मेला : एक नई शुरुआत

आदिवासियों ने हाल ही में बाहरी समूहों की मदद से अपने पारंपरिक उत्सवों के कैलेंडर में नए त्यौहारों/मेलों आदि को शामिल किया है, खासकर कृषि के क्षेत्र में। ऐसा ही एक आयोजन बिहान मेला है जो 2019 से ओडिशा की कोंध जनजाति द्वारा मनाया जा रहा है। इसका शाब्दिक अर्थ है बीज उत्सव। यह क्षेत्र में, विशेष रूप से नयागढ़ जिले में उगाई जाने वाली स्वदेशी फसलों और किस्मों का उत्सव है। हरितक्रांति के बाद कोंध जनजाति के किसानों ने कई पारंपरिक फसलों को उगाना छोड़ दिया जो प्राकृतिक रूप से बीमारियों और कीटों के लिए प्रतिरोधी थीं। वे क्षेत्र की जलवायु के लिए भी उपयुक्त थीं और उनमें जलवायु परिवर्तन परिदृश्य का सामना करने की गुंजाइश थी। इस स्थिति को ध्यान में रखते हुए, वन अधिकारों और कृषि पारिस्थितिकीय खेती पर जनजाति के साथ काम करने वाले एक गैर-लाभकारी संगठन ने पारंपरिक किस्मों और मिश्रित फसल जैसी पारंपरिक कृषि प्रथाओं को बढ़ावा देने के उद्देश्य से बिहान मेले की शुरुआत की।

बीज महोत्सव दिसंबर के महीने में आयोजित किया जाता है, और यह लगभग एक पारंपरिक हाट बाजार की तरह है जहां किसान बीजों का आदान-प्रदान करते है। दासपल्ले ब्लॉक के 40 से अधिक गाँवों के किसान मेले में भाग लेते हैं जहां आदिवासी संगीत और नृत्य भी उत्साह के साथ प्रदर्शित किए जाते हैं। आदिवासी महिलाएं इस आयोजन में केंद्रीय भूमिका निभाती हैं, क्योंकि वे स्वदेशी किस्मों के बीज इकट्ठा करती हैं और उन्हें मिट्टी के बर्तनों में संग्रहित करती हैं। त्यौहार के दिन, महिलाएं बीज के बर्तनों को लाल और सफेद रूपांकनों से सजाती हैं और उन्हें बांस की टोकरी में मेले में ले जाती हैं। पुरुष उनके साथ ड्रम और अन्य संगीत वाद्ययंत्र बजाते हैं। आदिवासी किसानों के बीच पारंपरिक तरीके से बीजों का आदान-प्रदान किया जाता है।

देशी बीजों के आदान-प्रदान को सुविधाजनक बनाने और उपलब्धता बढ़ाने के लिए, संगठन ने 2019 में ही रायसर गाँव में एक 'बीज बैंक' की स्थापना की। किसानों की सक्रिय भागीदारी के साथ, बैंक कोंध गाँवों से देशी बीजों को इकट्ठा करता है, उन्हें संरक्षित करता है और उन्हें खेती के लिए किसानों को उधार देता है। शुरुआत में, बैंक के पास धान की केवल 12 किस्में थीं, लेकिन अब यह 62 किस्मों के धान, चार किस्मों के बाजरा, पांच किस्मों की दालों और आठ प्रकार की सब्जियों का एक बड़ा भंडार बन गया है। किसानों को खेती के पहले साल में ही बीजों की दोगुनी मात्रा या दो अलग-अलग किस्म के बीज वापस करने होते हैं। यह बैंक कोंध जनजाति के किसानों के लिए खुला है और इससे 750 से अधिक परिवार लाभान्वित हुए हैं। सफलता से प्रेरित होकर, और भी बीज बैंक खोलने की योजना है।

को उखाड़ देते हैं। अगस्त के महीने में, आदिवासी अपने खेतों में हल चलाने से पहले हल सप्ताह मनाते हैं। हल को हल्दी पाउडर से साफ किया जाता है, चूड़ियों आदि से सजाया जाता है और अपने खेतों में ले जाने से पहले उसकी पूजा की जाती है। सितंबर के महीने में आयोजित होने वाले त्यौहार का उद्देश्य जंगल के फूलों का उपयोग करके मच्छरों से छुटकारा पाना है। आदिवासी हल्दी पाउडर से सभी औजारों, हथियारों, बर्तनों, फर्नीचर आदि को सजाकर दुर्गा पूजा मनाते हैं। आमतौर पर अक्टूबर में आयोजित होने वाले इस त्यौहार के बाद नंदम्मा देवी त्यौहार मनाया जाता है जिसमें खेतों से कटी हुई फसल को लाया जाता है। नवंबर वह महीना है जिसमें आदिवासी विभिन्न खेल खेलकर अपने शारीरिक कौशल का प्रदर्शन करते हैं। 'कांडा उत्सव' दिसंबर के महीने में शुरू होता है और जनवरी में रेडग्राम सप्ताह के रूप में समाप्त होता है। इस क्षेत्र के आदिवासी सबसे अधिक खपत वाली फसल या उपज के लिए त्यौहार मनाते हैं जो सीधे उनकी आजीविका के लिए सहायक और लाभदायक है।

उत्तर-पूर्व भारत अपने जंगलों और पहाड़ियों में बड़ी संख्या में जनजातियों के निवास के कारण देश के सबसे सांस्कृतिक रूप से समृद्ध क्षेत्रों में से एक है। कृषि जनजातीय अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार है इसलिए उनके

अधिकांश त्यौहार, रीति-रिवाज़ और अनुष्ठान बुआई से लेकर कटाई के बाद की प्रक्रियाओं तक विभिन्न कृषि कार्यों के इर्द-गिर्द घूमते हैं। असम में मिसिंग एक प्रमुख जनजाति है जो अली-ऐ-लिगांग और पोराग नामक दो प्रमुख कृषि त्यौहार मनाती है। पहला खेती की शुरुआत का प्रतीक है, जबकि दूसरा फसल कटाई के बाद का त्यौहार है। अली-ऐ-लिगांग फाल्गुन माह के पहले बुधवार को मनाया जाता है। इस अवसर पर चावल और विभिन्न करी बनाने की प्रथा है, लेकिन किसी भी व्यंजन में तेल का उपयोग नहीं किया जाता है। एक प्रचलित मान्यता के अनुसार, तेल का उपयोग करने से फसल कटने से पहले ही सूख जाती है या कम हो जाती है। आदिवासी गीतों और नृत्यों के साथ खेतों में बुआई की जाती है, जो विभिन्न खेती और शिकार कार्यों को दर्शाते हैं। बुआई से पहले आदिवासी एक अनिवार्य अनुष्ठान के रूप में खेतों में एक विशेष प्रकार का ढोल बजाते हैं। आदिवासियों का मानना है कि यदि यह ढोल नहीं बजाया गया तो बीज ठीक से अंकुरित और विकसित नहीं होंगे। पोरग को अगहन और फाल्गुन के महीनों में फसल कटाई के बाद के त्यौहार के रूप में हर्ष और उल्लास के साथ मनाया जाता है। आमतौर पर ग्रामीण इसे अपनी सुविधा के अनुसार 3-4 साल के अंतराल के बाद मनाते हैं। इसे नोरा सिगा बिहू के नाम से भी जाना जाता है, यह 5 दिनों तक चलने वाला त्यौहार है जिसमें ज़्यादातर युवा लड़के और लड़कियां आदिवासी संगीत, नृत्य और भोजन का आनंद लेते हुए भाग लेते हैं। जिन महिलाओं की शादी अन्य ग्रामीणों से हुई है, उन्हें भी अपने पतियों के साथ दावत के लिए आमंत्रित किया जाता है। यह त्यौहार एकता को मज़बूत करता है और विभिन्न गाँवों के बीच सांस्कृतिक आदान-प्रदान सुनिश्चित करता है।

कृषि नगा समुदाय के लिए जीविका और आजीविका का मुख्य स्रोत है, जिसमें नगालैंड के विभिन्न हिस्सों में रहने वाली 17 जनजातियां शामिल हैं। वे विभिन्न कृषि गतिविधियों को त्यौहारों के रूप में मनाते हैं जैसे बीज बोना, बुआई के बाद खेतों की सफाई और फसल पूरी होना। 'ऐलोंग' उत्सव खेतों में नए बीज बोने के बाद भरपूर फसल के लिए दैवीय आशीर्वाद पाने के लिए मनाया जाता है। उत्सव हर साल मुख्य रूप से कोन्याक जनजाति द्वारा पांच दिनों 1-6 अप्रैल तक जारी रहता है। वे आदिवासी नृत्य और संगीत में शामिल होते हैं और उर्वरता के पंथ की पूजा करते हैं। एक केंद्रीय अनुष्ठान के रूप में लोग गाँव के सामने एक बांस के खंभे को सजाते हैं और गाँव के पुजारी पारंपरिक पूजा करते हैं। बीज बोने और खेतों की सफाई करने के बाद, एओ जनजाति के लोग मोआत्सी मोंग त्यौहार को बड़े धूमधाम के साथ मनाते हैं। स्थानीय रूप से मोआत्सु के नाम से जाना जाने वाला यह 3 दिवसीय त्यौहार हर साल मई के पहले सप्ताह में मनाया जाता है। आदिवासी लोग इसके चारों ओर उत्सवों के कारण इसे वर्ष का सबसे खुशी का समय मानते हैं। रिवाज़ के हिस्से के रूप में, वे आग जलाते हैं, जिसे 'संगपंगतु' कहा जाता है, और अपने सर्वोत्तम पारंपरिक परिधानों में उसके चारों ओर बैठते हैं। महिलाएं पारंपरिक भोजन और पेय परोसती हैं, जिसके बाद गीत, नृत्य और कहानी कहने का सत्र होता है। उत्सव का समापन पुरुषों और महिलाओं के बीच रस्साकशी के खेल के साथ होता है। त्यौहार के दौरान, आदिवासी प्रार्थना करते हैं और जंगलों का उनके इनाम के लिए और पूर्वजों का उनके आशीर्वाद के लिए आभार व्यक्त करते हैं। नगालैंड की दिमांसा जनजाति जनवरी की फसल पूरी होने पर बुशु दिमा त्यौहार मनाती है। जनजाति के लोग अपने धान के खेत की उपज को अपने सर्वोच्च देवता, जिन्हें ब्राई सिबराई मडाई कहा जाता है, को अर्पित करते हैं। यह 3

नए चावल के मौसम के आगमन का प्रतीक नुआखाई फसल उत्सव।

तिब्बती नववर्ष और कटाई के मौसम का प्रतीक लोसर त्यौहार

दिनों तक चलने वाला त्यौहार है जिसमें ढोल बजाना, नृत्य करना और दावत करना अभिन्न है। खेल-कूद भी इसका हिस्सा है। आजकल उत्सव के अंतिम दिन भाग लेने के लिए मेहमानों और पर्यटकों का भी स्वागत किया जाता है।

'म्योको' अरुणाचल प्रदेश में अपातानी जनजाति द्वारा मनाए जाने वाले सबसे महत्वपूर्ण त्यौहारों में से एक है। ये त्यौहार हर साल 20 मार्च से 19 अप्रैल तक मनाया जाता है, लेकिन इसकी वास्तविक तैयारियां अक्टूबर से ही शुरू हो जाती हैं। यह त्यौहार इनकी सदियों पुरानी मान्यता को पुष्ट करता है कि अनुष्ठान करने से वे खेतों और उसके लोगों दोनों में उर्वरता सुनिश्चित कर सकते हैं। इडु मिश्मी जनजाति परिवार और फसलों की समृद्धि की कामना के लिए हर साल 1 से 3 फरवरी तक 'रेह' त्यौहार मनाती है। आशीर्वाद पाने के लिए त्यौहार के दौरान विभिन्न देवी-देवताओं का आह्वान किया जाता है। 'मोपिन' मध्य अरुणाचल प्रदेश की गालो जनजाति द्वारा मनाया जाने वाला एक कृषि त्यौहार है। हर साल 5 अप्रैल को मनाए जाने वाले इस त्यौहार में मौज-मस्ती करने वालों के चेहरों पर चावल का आटा लगाया जाता है क्योंकि चावल इस जनजाति का मुख्य भोजन है। क्षेत्र की न्यिश जनजाति हर साल 26 फरवरी को न्योकुम त्यौहार मनाती है।

'लोसर' सिक्किम के स्थानीय समुदायों द्वारा मनाए जाने वाले सबसे लोकप्रिय त्यौहारों में से एक है। त्यौहार तब शुरू होता है जब किसान कटाई पूरी कर लेते हैं और अपनी कड़ी मेहनत और धैर्य का जश्न मनाने के लिए एक साथ आते हैं। हालांकि, 'लोसर' मूल रूप से नए साल में अच्छी फसल के लिए प्रार्थना है। 'साकेवा' सिक्किम का एक और प्रसिद्ध त्यौहार है जो ज़्यादातर किरात खंबा राय समुदाय द्वारा मनाया जाता है। यह त्यौहार आशीर्वाद के लिए कई रूपों में धरती माता को श्रद्धांजलि के रूप में मनाया जाता है। लोसूंग या नून्सोंग त्यौहार फसलों की कटाई का मौसम खत्म होने का जश्न मनाता है। यह सिक्किम के नववर्ष का भी प्रतीक है।

आदिवासी प्रकृति में बहुत विश्वास करते हैं और इसलिए अधिकांश त्यौहारों में पाँच प्राकृतिक तत्वों की पूजा करते हैं। चूंकि इन तत्वों का समावेशन कृषि के लिए महत्वपूर्ण है, आदिवासी त्यौहारों के दौरान किए जाने वाले कई अनुष्ठानों और रीति-रिवाज़ों के माध्यम से इनके संरक्षण के लिए अपनी प्रतिबद्धता दिखाते हैं। देवताओं के साथ-साथ आदिवासी अपने कृषि और शिकार के औजारों की भी पूजा करते हैं जिन्हें वे स्थानीय प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग करके स्वयं बनाते हैं। ऐसे उत्सवों में बहुत उच्च स्तर की एकता भी प्रदर्शित होती है क्योंकि इसमें हर छोटे गाँव, हर घर और परिवार के हर व्यक्ति की भागीदारी होती है। जनजातीय क्षेत्रों में पर्यटन पर बढ़ते ज़ोर और पर्यटकों की आमद के साथ, ये त्यौहार आम जनता के बीच लोकप्रियता हासिल कर रहे हैं। यह आदिवासी संस्कृति की प्रगति और विस्तार के लिए अच्छा संकेत है। ❑

पूर्वोत्तर भारत के प्रसिद्ध आदिवासी लोकनृत्य

-डॉ. समुद्र गुप्ता कश्यप

दो सौ से अधिक जनजातियों और सजातीय समुदायों का घर, भारत के पूर्वोत्तर क्षेत्र को अक्सर त्यौहारों, संगीत और नृत्य के क्षेत्र के रूप में जाना जाता है। प्रत्येक जनजाति या समुदाय के अपने अलग-अलग त्यौहार होते हैं जिनमें से अधिकांश बुआई, फसल कटाई और नए वर्ष पर केंद्रित होते हैं। इस लेख में पूर्वोत्तर के विभिन्न राज्यों के कुछ प्रसिद्ध लोक नृत्यों की जानकारी दी गई है।

अरुणाचल प्रदेश की 25 से अधिक जनजातियों और 100 उप-जनजातियों को मोटे तौर पर दो श्रेणियों में विभाजित किया गया है- बौद्ध और गैर-बौद्ध या विभिन्न स्वदेशी धर्मों के अनुयायी। स्वदेशी आस्था का पालन करने वाले निशी लोगों के लिए, सबसे महत्वपूर्ण लोकनृत्य रिखम पाडा है। प्रत्येक सामुदायिक उत्सव के दौरान किए जाने वाले नृत्यों और गीतों के मिश्रित रूप में नर्तक बेंत की बड़ी टोपी पहनते हैं और पीटे गए बेल धातु से बना एक प्राचीन कमर-बेल्ट पहनते हैं (जो एक पारिवारिक विरासत है जो पीढ़ियों से चली आ रही है)। गीत, गाथागीत रूप में हैं, जो देवताओं और पूर्वजों के सम्मान में गाए जाते हैं, साथ ही कुछ प्रेम कहानियां भी हैं।

आदि जनजाति के लिए पोनुंग सबसे महत्वपूर्ण लोक नृत्य है। भरपूर फसल प्राप्त करने की इच्छा में सोलुंग उत्सव का हिस्सा, यह नृत्य विशेष रूप से महिलाओं द्वारा किया जाता है और मिरी नामक एक पुरुष उनका मार्गदर्शन करता है। जब मिरी एक योक्सा (तलवार) को हिलाकर तेज़ आवाज़ निकालता है, तो महिलाएं उसके चारों ओर सुंदर ढंग से व्यवस्थित पैटर्न में इकट्ठा होती हैं और उसके द्वारा शुरू किए गए कोरस में उन्हीं पंक्तियों को दोहराती हैं और हाथों की नाजुक हरकतों के साथ गीत की लय के साथ एक सुर में घूमती हैं। महिलाएं गले

लेखक गुवाहाटी स्थित पत्रकार हैं। ई-मेल : sgkashyap@gmail.com

आदि समुदाय का पोनुंग नृत्य

(पारंपरिक स्कर्ट), गैलुप (पारंपरिक टॉप या ब्लाउज़) पहनती हैं, अपने सिर को शंक्वाकार आकार के कपड़े के टुकड़े से ढकती हैं और विभिन्न पारंपरिक आभूषण पहनती हैं। इसके विपरीत, डेलॉन्ग पुरुषों का एक आदि लोकनृत्य है जो एटोर उत्सव के दौरान किया जाता है। इस नृत्य में गाँव के खेतों को जानवरों से बचाने के लिए उनके चारों ओर बाड़ बनाना या उनकी मरम्मत करना दर्शाया जाता है।

अपातानी लोगों के बीच, दामिंडा लोकनृत्य, ड्रि उत्सव की शुरुआत और अंत को चिह्नित करने के लिए किया जाता है। महिलाओं द्वारा प्रस्तुत यह नृत्य पारंपरिक कृषि के विभिन्न पहलुओं को दर्शाता है और नर्तकियों के अद्भुत फुटवर्क और हाथ की मुद्राओं द्वारा इसे पहचाना जाता है।

मोनपा लोग, जो महायान बौद्ध धर्म को मानते हैं, उनके 22 अलग-अलग प्रकार के लोकनृत्य हैं जिन्हें 'चाम' कहा जाता है, जिनमें से कुछ तीन दिवसीय मठवासी त्यौहार तोर्ग्या के दौरान किए जाते हैं। उनमें से, फा चाम का प्रदर्शन एक अकेले व्यक्ति द्वारा भिक्षु की पोशाक में फा (सूअर) का मुखौटा पहने हुए किया जाता है। यह देवताओं और आत्माओं को शांत करने के लिए किया जाता है ताकि तोर्ग्या त्यौहार मनाने के लिए सही परिस्थितियां बनाई जा सकें और अच्छे स्वास्थ्य और समृद्धि की शुरुआत की जा सके। दूसरी ओर, शनाग चाम का प्रदर्शन बारह नर्तकों द्वारा किया जाता है जो तांत्रिक पुजारियों का प्रतिनिधित्व करते हैं जो फोड़का (टखनों तक का एक गाउन जिस पर खूब सारी कढ़ाई की हुई होती है) और पंग खेब (रंगीन कढ़ाई वाला एक एप्रन) पहनने के साथ-साथ शनाग नामक एक काली, चौड़ी किनारे वाली टोपी पहनते हैं। गॉन-न्यिन चाम का प्रदर्शन ग्यारह नर्तकों द्वारा किया जाता है, जिनमें से प्रत्येक एक हाथ में अनुष्ठान की घंटी और दूसरे में डमरू पकड़े हुए होते हैं और डाकिनियों का प्रतिनिधित्व करते हैं जो बौद्ध धर्म के रक्षक हैं। यह नृत्य आमतौर पर मठ के निर्माण या पवित्र मूर्ति की स्थापना के दौरान किया जाता है ताकि बौद्ध सिद्धांत की प्रगति में बाधा उत्पन्न करने वाले राक्षसों को दूर किया जा सके।

असम

संस्कृतियों के मिलन बिंदु, असम में 23 अनुसूचित जनजातियां हैं, जिनमें से बारह को मैदानी जनजातियां कहा जाता है और ग्यारह पहाड़ी जनजातियां हैं जिनमें से प्रत्येक के अपने-अपने लोकनृत्य हैं।

बागरुम्बा नृत्य युवा बोडो महिलाओं द्वारा दोखोना (शरीर पर लपेटने वाला) और फली (दुपट्टा) जैसी पारंपरिक पोशाक पहन कर युवा पुरुषों द्वारा बजाए गए खाम (ड्रम), सेरजा (एक तार वाद्य) और सिफूंग (बांसुरी) की ताल पर किया जाता है। यह आमतौर पर वसंत ऋतु में समुदाय की समृद्धि और कल्याण के लिए प्रार्थना करने के लिए किया जाता है। नर्तकियां तितलियों की तरह दिखती हैं जब वह अपनी फली को बग़ल में पकड़ती हैं और संगीत की ताल पर लहराती हैं। एक अन्य वसंत के समय का बोडो लोकनृत्य जिसे 'बर्दविसिखला' कहा जाता है, पवन देवी के स्वागत के लिए किया जाता है।

मिसिंग लोगों के बीच, गुमराग सोमन सबसे लोकप्रिय लोकनृत्य है, जो अली-ए-ये लिगांग (वसंत ऋतु में बीज बोने का त्यौहार) का हिस्सा है। युवा पुरुष पारंपरिक मिबू गैलुग (बिना आस्तीन का जैकेट), गोनरो उगोन (लंगोटी) और डुमेर (पगड़ी) पहनते हैं और महिलाएं एगे (टखनों तक का निचला परिधान) और रिबी (शरीर का ऊपरी

बागरुम्बा नृत्य, असम

नोंगक्रेम नृत्य में भाग लेती खासी युवतियां, मेघालय

आवरण) पहनकर ड्रम, झांझ और बांसुरी की संगति में प्रेम विषयक ओइनिटोम गाने की लय पर नृत्य करती हैं। कार्बी आदिवासी समुदाय में, रिटनोंग चिंगडी, लिंगपम सोकचोन और हाचा हेकन कृषि से जुड़े लोक नृत्य हैं, जबकि निम्सो केरुंग और बंजार केकन मृत्यु संबंधी रस्मों से जुड़े हैं। कार्बियों का मानना है कि रंगसीना सर्पो नामक एक दिव्य व्यक्तित्व ने उन्हें सबसे पहले नृत्य और गाना सिखाया था।

मेघालय

मेघालय में, खासी लोग नोंगक्रेम उत्सव के दौरान नोंगक्रेम नृत्य करते हैं। यू लेई शिलॉन्ग नामक स्थानीय देवता को समर्पित, यह नृत्य युवा महिलाओं द्वारा उनके सबसे अच्छे रंगीन पारंपरिक आभूषण पहने हुए किया जाता है, जो ड्रम और बांसुरी की लयबद्ध धुनों के साथ तालमेल से सुंदर ढंग से नृत्य करती हैं।

वंगाला या हंड्रेड ड्रम नृत्य गारो के वंगाला महोत्सव का हिस्सा है, जो कठिन परिश्रम की अवधि के अंत की पहचान है और अच्छी फसल के लिए प्रार्थना करने के लिए आयोजित किया जाता है। जबकि पुरुष ढोल बजाते हैं, अन्य पुरुष और महिलाएं दो समानांतर कतारों में नृत्य करते हैं, पारंपरिक ढोल, घंटियों और बांसुरी के संगीत के साथ लयबद्ध तरीके से आगे बढ़ते हैं, जो भैंस के सींग से बनी आदिम बांसुरी के मधुर संगीत द्वारा संचालित होता है।

मिज़ोरम

मिज़ो लोकनृत्य भी उनकी आनंदपूर्ण निश्चिंत भावना की अभिव्यक्ति है। लगभग सभी मिज़ो लोकनृत्य जैसे चेराव, खुवल्लम, छिएह लाम, चाई, रल्लू लाम, सोलकिया, सरलामकाई और पार लाम कृषि चक्र से निकटता से संबंधित हैं। चेराव, जिसे अक्सर बांस नृत्य भी कहा जाता है, सबसे पुराना मिज़ो नृत्य है और ऐसा माना जाता है कि यह पहली शताब्दी ईस्वी में भी अस्तित्व में था। जबकि आठ युवा पुरुष चार जोड़े बांस के खंभों को पकड़ते हैं, दो अन्य, दो को पार करते हैं, और लयबद्ध ताल में बांस को खोलते और बंद करते हैं, युवा महिला नर्तक बारी-बारी से उनके बीच से अंदर और बाहर कदम रखती हैं। नर्तकियों को बांस की थाप पर सहजता और शालीनता के साथ अंदर और बाहर कदम रखते हुए देखना आश्चर्यजनक लगता है। ध्यान से देखने पर पता चलेगा कि नर्तकियों की चाल कभी पक्षियों की चाल की नकल होती है तो कभी पेड़ों के हिलने की।

खुल्लम- जिसका अर्थ है 'अतिथि का नृत्य' - एक मिज़ो लोकनृत्य है जो खुआंगचावी का हिस्सा है, एक समारोह जिसमें सामुदायिक दावत, नृत्य और संगीत शामिल है। आमंत्रित अतिथियों को खुआंगचावी क्षेत्र में नृत्य प्रस्तुत करते हुए प्रवेश करना होता है जिसे खुल्लम कहा जाता है। यह आमतौर पर पुरुषों द्वारा किया जाता है, जिन्हें लाल और हरे रंग की धारियों वाली पुवंडुम नामक एक विशेष पारंपरिक पोशाक पहननी होती है और घंटियों के सेट की लय के साथ तालमेल रखना होता है, जिन्हें दरबू के नाम से जाना जाता है।

छेइह लाम एक नृत्य है जो आनंद और उल्लास की भावना का प्रतीक है। लोगों का एक समूह एक घेरे

मिज़ोरम का चेराव नृत्य

में बैठता है और छीह हला नामक गीत गाता है, जिसे ड्रम या बांस की नली की धुन पर या सिर्फ हाथों की ताली के साथ गाया जाता है। नृत्य में केवल एक या दो व्यक्ति भाग लेते हैं और इसे अंगों और शरीर की विभिन्न गतिविधियों के साथ करते हैं। जैसे ही नृत्य अपने चरम पर पहुँचता है, आसपास के सभी लोग भी नृत्य में शामिल हो जाते हैं।

दूसरी ओर, जैसे कि प्रकृति की संतान के रूप में युवा मिज़ो पुरुष और महिलाएं, पार लाम नृत्य के माध्यम से पहाड़ों और नदियों की सुंदरता का उत्सव मनाते हैं। जहां लड़कियां रंग-बिरंगे परिधान पहने हुए हैं और उनके बालों में फूल लगे हुए हैं और वे प्रकृति की महिमा गा रही हैं, वहीं कुछ लड़के घंटा और एक तार वाला संगीत वाद्ययंत्र बजा रहे हैं। यह नृत्य धीमा लेकिन बहुत आकर्षक है और इसमें मुख्य रूप से उनके हाथों की हरकतें शामिल है जैसे कि बहती नदी की लहरें हों।

मणिपुर

मणिपुर में कई आदिवासी समुदाय हैं। माओ जनजाति के लिए, अशराई ओडो एक रंगों से भरा लोकनृत्य है जो अपनी स्वर लय और मधुर गतिविधियों के लिए जाना जाता है। दूसरी ओर, तांगखुल लोग लुइवाट फ़िज़ाक को अपना सबसे महत्वपूर्ण लोकनृत्य मानते हैं। खेती के विभिन्न चरणों और सरल आदिवासी जीवनशैली को दर्शाते हुए, यह नृत्य सभी पारंपरिक त्यौहारों जैसे लुइरा फैनिट (बीज बोने का त्यौहार), मनेई फैनिट (औजारों और उपकरणों का त्यौहार), और चुम्फू (फसल का त्यौहार) के दौरान किया जाता है। पुरुष और महिलाएं दोनों पारंपरिक पोशाक पहनते हैं, कुछ पुरुष फुंग (ड्रम), ताल (तुरही), पारेन (बांस पाइप) और सिपा (बांसुरी) की लय पर नृत्य करते समय भाले और तलवारें भी पकड़ते हैं।

काबुई आदिवासियों के बीच, शिम लैम या फ्लाई डांस और किट लैम दो सबसे लोकप्रिय लोकनृत्य हैं। शिम लैम का प्रदर्शन गैंग-नगाई उत्सव के दौरान किया जाता है और इसमें चमकदार पंखों वाला एक उड़ने वाला कीट ताजुइबोन की कहानी को दर्शाया जाता है, जो एक फूल से दूसरे फूल पर अमृत पीता हुआ घूमता रहता है। दूसरी ओर किट लैम नृत्य एक फसल उत्सव है जिसमें लयबद्ध नृत्य झींगुरों की गति का अनुकरण करता है।

नगालैंड

सत्रह प्रमुख और कई छोटी जनजातियों का घर, नगालैंड लोकनृत्यों की भूमि है। हालांकि हर जनजाति के लोकनृत्यों का वर्णन करना संभव नहीं है, यहां कुछ रोचक नृत्यों का वर्णन है।

अंगामी जनजाति का सबसे लोकप्रिय लोकनृत्य सोवी केहू है। यह एक सामुदायिक नृत्य है जो गाँव के केंद्र में एक खुली जगह पर होता है। एक प्रौढ़ व्यक्ति 'ओह-हू ओह-हू' ध्वनि के साथ आगे बढ़ता है और अन्य लोग गोलाकार गति में उसका अनुसरण करते हैं। एक बार जब एक बड़ा घेरा बन जाता है तो नेतृत्वकर्ता अपना दाहिना हाथ उठाता है और एक छोटी-सी छलांग लगाता है जिसका अन्य सभी लोग लयबद्ध क्रम में अनुसरण करते

हेगा उत्सव, नगालैंड

हैं। नेतृत्वकर्ता छलाँग लगाते हुए अपने कदमों को जारी रखता है और प्रत्येक छलाँग में घेरा छोटा तथा छोटा होता जाता है। एक बिंदु पर आकर नेतृत्वकर्ता पूरी तरह से यू-टर्न लेता है और रेखा को तोड़े बिना, वृत्त बड़ा और बड़ा होता जाता है जब तक कि वह फिर से एक बड़ा वृत्त नहीं बन जाता। एक बार जब बड़ा वृत्त पूरा हो जाता है, तो नेतृत्वकर्ता छलांग समाप्त करने का संकेत देता है और पूरे समूह द्वारा एक स्वर में बड़े हर्षोल्लास के साथ नृत्य समाप्त होता है।

यिमडोंगसु त्सुंगसांग, एओ जनजाति का एक प्रसिद्ध लोकनृत्य है। यह विरासत और आध्यात्मिकता का उत्सव है और नर्तक लैंगटेम (समुद्री सीपियों से सजी लंगोटी), होकोमांगजुत्सु (रंगे हुए जानवरों के बालों से सजा हुआ सैश, छाती पर दाहिने कंधे से कमर तक तिरछे पहने हुए), वामुलुंग (बाएं कंधे से कमर तक तिरछे पहना जाने वाला इसी तरह का सैश), और ओजुमी (हॉर्नबिल पक्षी का पूंछ पंख) आदि के साथ कमर से लटका हुआ एक दाओ (माचे) जैसी कई पारंपरिक वस्तुओं को पहनकर इंट्रीकेट मूवमेंट में गाँव की सड़कों पर चलते हैं। प्रत्येक कदम, प्रत्येक घुमावदार लचक और ढोल की हर थाप के साथ, गाँव जीवंत हो उठता है, एकता और सांस्कृतिक गौरव की धड़कन से गूंज उठता है।

चाकेसांग लोगों के बीच, ओह हियो त्यौहारों और समारोहों के दौरान पुरुषों द्वारा किया जाने वाला एक लोकप्रिय लोकनृत्य है। नर्तक विभिन्न पक्षियों और जानवरों की हरकतों की नकल करते हैं, जैसे मुर्गों की लड़ाई और बत्तखों द्वारा पंखों को फड़फड़ाना।

त्रिपुरा

त्रिपुरा में, रियांग आदिवासी होज़ागिरी उत्सव या लक्ष्मी पूजा के दौरान होज़ागिरी नृत्य करते हैं। जहां पुरुषों का एक समूह गीत की शुरुआत करता है और खाम (ड्रम) और सुमुई (बांसुरी) बजाता है, वहीं चार से छह महिलाएं नृत्य करती हैं, जिसके दौरान वे झूम (काटना और जलाना) खेती के पूरे चक्र का चित्रण करती हैं। दूसरी ओर, जमातिया और कलाई जनजातियां गरिया या शिव पूजा के दौरान गरिया नृत्य करती हैं, जिसमें युवा पुरुष और महिलाएं घर-घर जाते हैं, आंगन के बीच में भगवान गरिया का प्रतीक रखते हैं और इसके चारों तरफ घड़ी की सुई की विपरीत दिशा में घेरा बनाकर गाते हैं और नृत्य करते हैं। ❑

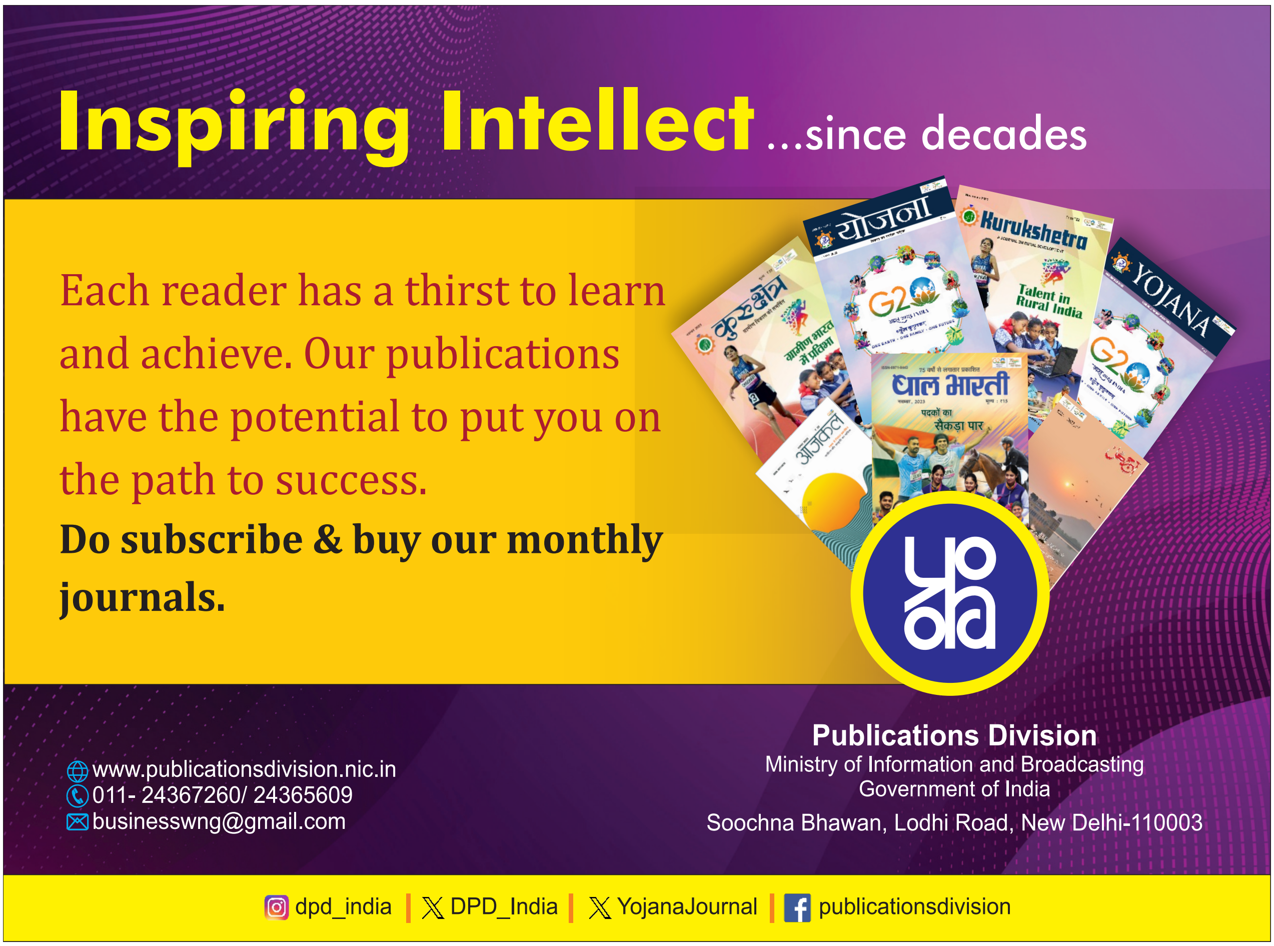

भारत में जनजातियों की सांस्कृतिक विरासत

-सुमन कुमार

भारत में जनजातीय समुदायों को हाशिए पर रखने, आर्थिक असमानताओं और पारंपरिक भूमियों को हटाने जैसी चुनौतियों का सामना करने के बावजूद, जनजातीय संस्कृतियां अपने अद्वितीय रीति-रिवाज़ों, भाषाओं और कला रूपों को संरक्षित करते हुए फल-फूल रही हैं। भारत का सांस्कृतिक परिदृश्य इसके जनजातीय समुदायों की जीवंत परंपराओं से काफी समृद्ध है, जिसमें प्रकृति और स्वदेशी मान्यताओं में गहराई से निहित संगीत, नृत्य, कला और अनुष्ठानों की एक विस्तृत श्रृंखला शामिल है।

एक जीवंत और समावेशी समाज को बढ़ावा देने के लिए सांस्कृतिक विविधता आवश्यक है। यह दुनिया के बारे में हमारी समझ को समृद्ध करता है, सहिष्णुता को बढ़ावा देता है, और जीवन के विभिन्न दृष्टिकोणों और तरीकों के प्रति सम्मान को प्रोत्साहित करता है। सांस्कृतिक विविधता को अपनाने से रचनात्मकता और नवीनता को बढ़ावा मिलता है, क्योंकि विविध दृष्टिकोण अक्सर नए विचारों और जटिल समस्याओं के समाधान की ओर ले जाते हैं। इसके अलावा, यह विभिन्न समुदायों की विशिष्ट पहचान और परंपराओं को संरक्षित करता है, जिससे मानव विरासत की समृद्धि में योगदान होता है। तेज़ी से परस्पर जुड़ी हुई दुनिया में सांस्कृतिक विविधता सार्थक संबंध बनाने और अलग-अलग पृष्ठभूमि के लोगों के बीच आपसी समझ को बढ़ावा देने के लिए एक पुल के रूप में कार्य करती है। सांस्कृतिक विविधता को स्वीकार करते हुए तथा उनका मूल्यांकन करके, हम अधिक सामंजस्यपूर्ण और न्यायसंगत वैश्विक समुदाय बना सकते हैं जहां सभी व्यक्तियों को खुद को अभिव्यक्त करने और सामूहिक प्रगति में योगदान का अधिकार प्राप्त हो।

'यूनेस्को' संयुक्त राष्ट्र शैक्षिक, वैज्ञानिक और सांस्कृतिक संगठन मानव समाज के मूलभूत पहलू के रूप में सांस्कृतिक विविधता की व्यापक समझ रखता है। यूनेस्को के अनुसार, सांस्कृतिक विविधता में न केवल भाषा, कला और परंपराओं जैसे संस्कृति के मूर्त पहलू शामिल हैं, बल्कि विश्वास, मूल्य और सामाजिक प्रथाओं जैसे अमूर्त पहलू भी शामिल हैं। यूनेस्को सांस्कृतिक विविधता को व्यक्तियों और समुदायों की समृद्धि के लिए संवाद, रचनात्मकता और आपसी सम्मान को बढ़ावा देने के स्रोत के रूप में मान्यता देता है। इसके अलावा, यूनेस्को मानव अधिकारों, गरिमा और सतत विकास को

लेखक संगीत नाटक अकादमी, दिल्ली में उपसचिव (नाटक/अमूर्त सांस्कृतिक विरासत) हैं। ई-मेल : sumankumarang@gmail.com

सुनिश्चित करने के साधन के रूप में सांस्कृतिक विविधता की सुरक्षा और संवर्धन के महत्व पर ज़ोर देता है। सांस्कृतिक विविधता के आंतरिक मूल्य को स्वीकार करके और अंतर-सांस्कृतिक संवाद को बढ़ावा देकर, यूनेस्को का लक्ष्य शांतिपूर्ण और समावेशी समाज का निर्माण करना है जहां सभी संस्कृतियों का सम्मान किया जाए और उनका उत्सव मनाया जाए। यूनेस्को सांस्कृतिक विविधता के लिए अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक सहयोग प्रदान करता है ताकि समुदायों को समृद्ध संस्कृति और रचनात्मक उद्योग के निर्माण में सहयोग मिल सके।

भारत विविध प्रकार के जनजातीय समुदायों का घर है, जिसमें 700 से अधिक विशिष्ट जनजातीय समूह सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त हैं। भारत की जनजातीय जनसंख्या लगभग 104 मिलियन है, जो देश की कुल जनसंख्या का लगभग 8% है। ये जनजातियाँ, जिन्हें अक्सर अनुसूचित जनजाति कहा जाता है, भाषा, संस्कृति, रीति-रिवाज़ों और परंपराओं के मामले में काफी भिन्न हैं। ऐसा अनुमान है कि भारत में 400 से अधिक जनजातीय भाषाएं बोली जाती हैं। ये भाषाएं द्रविड़ियन, इंडो-आर्यन, ऑस्ट्रो-एशियाटिक और तिब्बती-बर्मन सहित विभिन्न भाषा परिवारों से संबंधित हैं, जो भारत की जनजातीय आबादियों की विविध उत्पत्तियों और ऐतिहासिक प्रवासन को दर्शाती हैं।

भारत में जनजातीय समुदायों को हाशिए पर रखने, आर्थिक असमानताओं और पारंपरिक भूमियों को हटाने जैसी चुनौतियों का सामना करने के बावजूद, जनजातीय संस्कृतियां अपने अद्वितीय रीति-रिवाज़ों, भाषाओं और कला रूपों को संरक्षित करते हुए फल-फूल रही हैं। भारत का सांस्कृतिक परिदृश्य इसके जनजातीय समुदायों की जीवंत परंपराओं से काफी समृद्ध है, जिसमें प्रकृति और स्वदेशी मान्यताओं में गहराई से निहित संगीत, नृत्य, कला और अनुष्ठानों की एक विस्तृत शृंखला शामिल है। सांस्कृतिक उत्सवों, पारंपरिक ज्ञान के दस्तावेज़ीकरण और समुदाय-आधारित विकास परियोजनाओं जैसी पहलों के माध्यम से आदिवासी संस्कृतियों को पहचानने और बढ़ावा देने के लिए सरकारी और गैर-सरकारी दोनों संगठनों द्वारा प्रयास किए जा रहे हैं। हालांकि, भारत के व्यापक सांस्कृतिक विमर्श में जनजातीय आवाज़ों को अधिक मान्यता देने और उनके समावेशन की आवश्यकता बनी हुई है, ताकि उनके अमूल्य योगदान को पूरे देश में स्वीकार किया जाए और उनको मान्यता दिया जाना सुनिश्चित किया जा सके।

भारत की प्रमुख जनजातियों में गोंड हैं, जो मुख्य रूप से मध्य भारत में पाए जाते हैं, जो चित्रकला और संगीत जैसे जीवंत कला रूपों के लिए जाने जाते हैं। मुख्य रूप से पूर्वी राज्यों में रहने वाले संथालों में संगीत, नृत्य और मौखिक साहित्य की एक समृद्ध परंपरा है।

मिज़ो जनजाति का लोकनृत्य

आदि महोत्सव

पूर्वोत्तर क्षेत्र में, नगा, मिज़ो और खासी जैसी जनजातियां अपनी विशिष्ट भाषाएं, रीति-रिवाज़ और पारंपरिक शासन प्रणाली बनाए रखती हैं। भील और गुज्जर जो मुख्य रूप से पश्चिमी और उत्तरी भारत में रहने वाले हैं, का कृषि और पशुचारण से गहरा संबंध है, जो उनकी जीवनशैली और लोककथाओं में परिलक्षित होता है। इसके अतिरिक्त, झारखंड और छत्तीसगढ़ के आदिवासियों, जिनमें ओरांव, मुंडा और हो जैसी जनजातियां शामिल हैं, की अपनी पैतृक भूमि और वन संसाधनों से जुड़ी एक गहरी सांस्कृतिक पहचान है।

भारतीय जनजातीय समुदाय अनेक भाषाएं और बोलियां बोलते हैं, जो देश की समृद्ध भाषायी विविधता को दर्शाते हैं। भारतीय जनजातियों द्वारा बोली जाने वाली कुछ प्रमुख भाषाओं और बोलियों में संथाली शामिल है, जो मुख्य रूप से झारखंड, पश्चिम बंगाल, ओडिशा और बिहार में संथाल जनजाति द्वारा बोली जाती हैं; गोंडी, मध्य भारत में गोंड जनजाति द्वारा बोली जाती है, विशेष रूप से मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, महाराष्ट्र, तेलंगाना और आंध्र प्रदेश जैसे राज्यों में; खासी, मेघालय में खासी जनजाति द्वारा बोली जाती है; मिज़ो, मिज़ोरम में मिज़ो जनजाति द्वारा बोली जाती है; भीली, मुख्य रूप से राजस्थान, गुजरात और मध्य प्रदेश में भील जनजाति द्वारा बोली जाती है; और ओरॉंव झारखंड, छत्तीसगढ़, बिहार और पश्चिम बंगाल में ओरॉंव जनजाति द्वारा बोली जाती है। ये भाषाएं और बोलियां, कई अन्य भाषाओं के साथ, भारत के जनजातीय समुदायों की समृद्ध सांस्कृतिक कैनवास में अपूर्व योगदान करती हैं, जिनमें से प्रत्येक की अपनी अनूठी भाषायी विरासत और सांस्कृतिक पहचान है।

भारतीय जनजातीय लोककथाएं देश भर में स्वदेशी समुदायों के भीतर पीढ़ियों से चले आ रहे मिथकों, पौराणिक कथाओं और दंतकथाओं का खजाना है। भारत की प्रमुख जनजातीय लोककथाओं में गोंड, संथाल और खासी जैसी जनजातियों के समृद्ध मौखिक महाकाव्य हैं, जो सृजन, वीरता और अलौकिक प्राणियों की कहानियां सुनाते हैं। ये महाकाव्य अक्सर सांस्कृतिक मूल्यों और विश्वासों के भंडार के रूप में काम करते हैं, जो जनजातीय ब्रह्मांड और मनुष्यों तथा प्रकृति के बीच के संबंधों में अंतर्दृष्टि प्रदान करते हैं। इसके अतिरिक्त, भारतीय जनजातीय लोकगीत मनमोहक लोकगीतों, गाथागीतों और कहानी कहने की परंपराओं से परिपूर्ण हैं जो जनजातीय जीवन में जीत और संघर्षों का जश्न मनाते हैं; साथ ही नैतिक शिक्षा और मनोरंजन भी प्रदान करते हैं। ये लोकगीत परंपराएं भारतीय जनजातियों की सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित करने, अपने समुदायों के भीतर पहचान और अपनेपन की भावना को बढ़ावा देने और अतीत को वर्तमान से जोड़ने के लिए एक पुल के रूप में कार्य करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। लोकप्रिय आदिवासी गायक और संगीतकार तथा आधुनिक बैंड भी आदिवासी समुदायों के बीच लोकप्रिय हैं।

भारत की जनजातीय लोककथाएं समृद्ध आख्यानों का कलेडोस्कोप हैं, जिनमें से प्रत्येक सांस्कृतिक प्रतीकों और पैतृक ज्ञान के साथ बारीकी से बुनी हुई हैं। इन अनमोल कहानियों में संथाल जनजाति की 'महानायक ठाकुर जीउ' जैसी पौराणिक कथाएं हैं, जो उनके पूजनीय व्यक्ति के वीरतापूर्ण कार्यों को दर्शाती हैं। भील जनजाति सुरक्षा और उर्वरता के पर्याय देवता 'पिथोरो' का वाचन, अर्चन व पूजन करते हैं। गोंड लोककथाओं में 'सिंग बोंगा' महाकाव्य सर्वोच्च है, जिसमें प्रकृति और सृजन का आध्यात्मिक सार सम्मिलित है। इस बीच, मुंडा जनजाति ने असाधारण क्षमताओं वाले एक पौराणिक व्यक्ति 'लंघन बाबा' की गाथा साझा की है। खासी पहाड़ियों के पार,

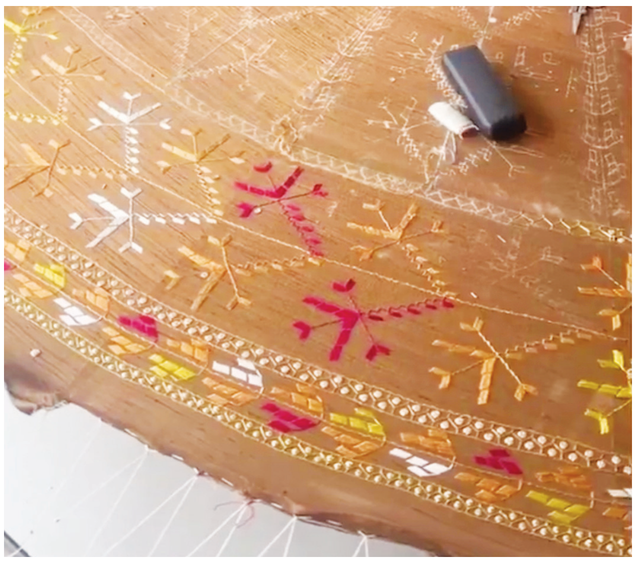
फुलकारी कढ़ाई

'यू थलेन' का मिथक लालच और परिणाम की एक चेतावनीपूर्ण कहानी बताता है। मिज़ो लोककथाओं में, 'द लीजेंड ऑफ़ पु लल्लुला' अपनी चतुर चालबाज़ हरकतों से मनोरंजन करता है। नगा समुदाय 'पु जाबी की गाथा' का सम्मान करता है, जो साहस और लचीलेपन का प्रमाण है। संथाल परंपरा अपने दिव्य निर्माता और रक्षक 'द स्टोरी ऑफ़ मरांग बुरु' का सम्मान करती है। उराँव लोककथाएं 'बेरा के मिथक' की बात करती हैं, जो एक ज्ञानी आत्मा है जो उनके पथ का मार्गदर्शन करती है। अंत में, हो जनजाति, शक्ति और ज्ञान के प्रकाश स्तम्भ 'द लीजेंड ऑफ ठक्कर बापा' का उत्सव मनाती है। जनजातीय पहचान से जुड़ी ये कहानियां भारत की स्वदेशी विरासत की सांस्कृतिक समृद्धि और आध्यात्मिक गहराई को उजागर करती हैं।

भारत में जनजातीय समुदायों ने देश के संगीत उद्योग में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। आदिवासी संगीत में आमतौर पर ड्रम, बांसुरी, तार वाले वाद्ययंत्र और स्वदेशी ताल वाद्यों का उपयोग किया जाता है। आदिवासी संगीत का प्रभाव बॉलीवुड फिल्मों में देखा जा सकता है, जहां संगीतकार अक्सर आदिवासी लय और धुनों को फिल्म स्कोर और गीतों में शामिल करते हैं, जिससे संगीत में एक देहाती और प्रामाणिक झलक दिखाई देती है। छत्तीसगढ़ से तीजन बाई, नगालैंड से तेत्सियो बहनें और रेबेन मशांगवा, झारखंड से मुकुंद लाल नायक, नंद लाल नायक, असम से पंचुना राभा,सिक्किम सेत्सेशु ल्हामो (लद्दाख), सोनम शेरिंग लेप्चा, नरेन गुरुंग और हिल्डा मिट लेप्चा विभिन्न जनजातियों के लोकप्रिय कलाकारों के कुछ उदाहरण हैं जो इनकी भाषा से अनजान दर्शकों को भी मंत्रमुग्ध कर देते हैं।

भारतीय सिनेमा में, कई यादगार संगीत रचनाएं, नृत्य आइटम और जंगल के दृश्यों ने आदिवासी जीवन से प्रेरणा ली है, जिससे सिनेमाई अनुभव में गहराई और प्रामाणिकता आई है। ए.आर. रहमान, विशाल भारद्वाज जैसे संगीतकार और संजय लीला भंसाली ने अपने गीतों में जनजातीय लय, धुनों और वाद्ययंत्रों को कुशलतापूर्वक मिश्रित किया है, जिससे पारंपरिक और समकालीन ध्वनियों का मिश्रण तैयार हुआ है। फिल्म दिल से 'जिया जले' और दिल्ली-6 के 'दिल गिरा दफातन' जैसे गीतों में आदिवासी धुनों से युक्त मनमोहक धुनें शामिल हैं, जबकि कौन कितने पानी में का 'रंगाबती' और दिल्ली-6 का 'गेंदा फूल' में क्रमशः ओडिशा और पश्चिम बंगाल के लोक तत्व शामिल हैं। यहां तक कि द जंगल बुक जैसी बच्चों की फिल्मों में भी विशाल भारद्वाज का गीत 'जंगल जंगल बात चली है' अपने आदिवासी-प्रेरित संगीत के साथ जंगल के सार को दर्शाता है। ये रचनाएं न केवल सिनेमाई कथा को समृद्ध करती हैं, बल्कि भारत के आदिवासी समुदायों की सांस्कृतिक विरासत और विविधता को भी नमन करती हैं, जिससे यह सुनिश्चित होता है कि उनकी आवाज़ सिल्वर स्क्रीन पर भी गूंजती रही है। यह भी सच है कि फिल्मों ने ज़्यादातर आदिवासी संस्कृति को विभिन्न रंग-रूपों में ही प्रस्तुत किया है न कि शक्तिशाली विषयगत सामग्री के रूप में।

भारतीय रंगमंच में आदिवासियों की महत्वपूर्ण उपस्थिति है। कई समकालीन थिएटर समूहों और नाटककारों ने आदिवासी समुदायों द्वारा सामना किए जाने वाले भूमि अधिकार, विस्थापन और पहचान की राजनीति जैसे मुद्दों पर प्रकाश डालते हुए आदिवासी जीवन, संस्कृति और संघर्ष से संबंधित विषयों को अपनी प्रस्तुतियों में शामिल किया है। ये प्रस्तुतियां आदिवासी आवाज़ों को सुनने और दर्शकों को उनके जीवन के अनुभवों के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए एक मंच प्रदान करती हैं। भारतीय रंगमंच में आदिवासियों की उपस्थिति उनके लचीलेपन, रचनात्मकता और सांस्कृतिक जीवन शक्ति का प्रमाण है, जो उनके विविध आख्यानों और प्रदर्शन परंपराओं के साथ नाटकीय परिदृश्य को समृद्ध करती है।

भारतीय नाटकों में, आदिवासियों को अक्सर देश की सामाजिक-राजनीतिक जटिलताओं और सांस्कृतिक विविधता को दर्शाने वाले अभिन्न पात्रों के रूप में चित्रित किया जाता है। बिजन भट्टाचार्य के 'सोनाझुरी' जैसे नाटक शोषण और उत्पीड़न के खिलाफ आदिवासी समुदायों के संघर्षों को बताने के साथ-साथ भूमि अधिकारों और विस्थापन के मुद्दों पर प्रकाश डालते हैं। इसी तरह नागमंडल (गिरीश कर्नाड), जसमा ओडन (शांता गांधी), चंदा बेड़नी (अलखनंदन), गायत्री पशु (भानु भारती), भीमा भील, अग्नि तिरिया (रवींद्र भारती), धरती आबा (हृषिकेश सुलभ), पोस्टर (शंकर शेष) हिरमा की अमर कहानी (हबीब तनवीर) जैसे नाटक आदिवासियों की सामाजिक-आर्थिक अरक्षितता और परंपरा तथा आधुनिकता के बीच टकराव का पता लगाते हैं। सत्यजीत रे की 'हीरक राजार देशे' जैसी फिल्मों में आदिवासियों को अधिकारहीन समुदाय के रूप मे दिखाया गया है जिनसे सत्ता में बैठे लोगों द्वारा चालाकी से कार्य निकलवाया जाता था। इसके अंदर समाज में सत्ता की शक्तिशाली जटिलताओं को प्रदर्शित किया गया है। इन नाटकों के माध्यम से, आदिवासी केंद्रीय शख्सियतों के रूप में उभरे हैं, उनकी कहानियां एक लेंस के रूप में काम करती हैं जिसके

ढोकरा धातु ढलाई

माध्यम से भारतीय समाज के भीतर पहचान, अन्याय और प्रतिरोध के व्यापक विषयों की जांच की जा सकती है। हबीब तनवीर, रतन थियाम, एच. कन्हाईलाल, मधुसूदन देबबर्मा, जीतराई हांसदा, सुकुमार टुडू, शुक्राचार्य राभा, पाबित्रा राभा, मुन्ना लोहार नाटकीय कला में आदिवासी सामग्री के प्रयोगकर्ता हैं।

असंख्य पारंपरिक नाटक इन स्वदेशी समुदायों से उत्पन्न हुए हैं। 'पिरामा' संथाल जनजाति से है, जो बहादुरी और नेतृत्व की कहानी है, जबकि गोंड जनजाति से 'करमाबाई' है, जो अन्याय के खिलाफ संघर्ष को दर्शाती है। बोडो लोग अपने नए साल के त्यौहार के दौरान प्रेम और प्रकृति के प्रसंगों का जश्न मनाते हुए 'लाओखोवा' का प्रदर्शन करते हैं, जबकि कोया जनजाति का 'हुदहुद' एक पौराणिक पक्षी के कारनामों का वर्णन करता है। पांडवानी, गोंडों की कहानी कहने की शैली है, जो महाभारत के प्रसंगों को दोबारा सुनाती है, और तुलु भाषी क्षेत्रों से यक्षगान में हिंदू पौराणिक कथाओं को चित्रित करने के लिए नृत्य, संगीत और संवाद का संयोजन है। हो नाटक 'जादुरंगा' में प्रेम और अलौकिकता की खोज दिखाई गई है, जबकि संथाल नाटक 'गंधा मदाना' प्रेम और विश्वासघात के विषयों पर प्रकाश डालता है। भील जनजाति का 'भवरिया' बहादुरी और सामाजिक न्याय पर ज़ोर देता है, और ओरांव जनजाति का 'हचचिया' प्रेम और सामुदायिक जीवन का जश्न मनाता है। ये नाटक न केवल मनोरंजन करते हैं बल्कि भारत के आदिवासी समुदायों की जीवंत सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित और प्रदर्शित भी करते हैं।

भारत का सांस्कृतिक परिदृश्य जीवंत उत्सवों और त्यौहारों से भरा पड़ा है जो अपने आदिवासी समुदायों की समृद्ध और विविध पहचान बयां करते हैं। राष्ट्रीय जनजातीय महोत्सव (आदि महोत्सव) और भारत का जनजातीय महोत्सव (आदिवासी जात्रा) देश भर की स्वदेशी जनजातियों की असंख्य परंपराओं, कलाओं और व्यंजनों को प्रदर्शित करने का काम करते हैं। छत्तीसगढ़ में, बस्तर दशहरा महोत्सव में आदिवासी प्रथाओं और रीति-रिवाज़ों का जश्न मनाया जाता है, जबकि नगालैंड का हॉर्नबिल महोत्सव अंतर-आदिवासी सांस्कृतिक आदान-प्रदान और एकजुटता को बढ़ावा देता है।

मेघालय का वांगला महोत्सव और मिज़ोरम का मिम कुट महोत्सव फसल अनुष्ठानों, संगीत और नृत्य के साथ आदिवासी विरासत का सम्मान करते हैं। अरुणाचल प्रदेश का जीरो संगीत महोत्सव और पश्चिम बंगाल का पौष मेला आदिवासी समुदायों की कलात्मक प्रतिभाओं को उजागर करता है, जबकि झारखंड का करम महोत्सव और मिज़ोरम का चेराव नृत्य महोत्सव आदिवासी आध्यात्मिकता और सांस्कृतिक प्रथाओं की झलक पेश करता है। ये उत्सव न केवल जनजातीय परंपराओं को संरक्षित करते हैं बल्कि विविध सांस्कृतिक अभिव्यक्ति के बहुरंगी समागम के लिए समझ, प्रशंसा और सम्मान को भी बढ़ावा देते हैं जो भारत की जनजातीय विरासत हैं।

पोचमपल्ली इकत के जटिल टाई-एंड-डाई पैटर्न से लेकर फुलकारी कढ़ाई के जीवंत फूलों वाले रूपांकनों तक, प्रत्येक कपड़ा अपने आदिवासी रचनाकारों की कहानियों और प्रतीकों को दर्शाता है। देश भर के कुशल कारीगरों द्वारा तैयार किए गए अलंकृत चांदी के आभूषण, आदिवासी पुरुषों और महिलाओं को हार, झुमके, कंगन और पायल से सजाते हैं, प्रत्येक टुकड़ा परंपरा और विरासत की कहानी कहता है। डोकरा आभूषण, अपने देहाती आकर्षण और प्राचीन तकनीक के साथ, आदिवासी शिल्प कौशल का सार दर्शाते हैं, जबकि टेराकोटा आभूषण आदिवासी रूपांकनों से सजी मिट्टी की सुंदरता को प्रदर्शित करते हैं। महाराष्ट्र की गोंड जनजाति की लुगाडे साड़ी और राजस्थान की आदिवासी महिलाओं की घाघरा चोली जैसी पारंपरिक पोशाकें जीवंत रंगों और जटिल डिज़ाइनों का प्रमाण हैं जो आदिवासी पोशाक को परिभाषित करती हैं। हिमाचल प्रदेश से लेकर मणिपुर तक हाथ से बुने हुए शॉल आदिवासी बुनकरों की कुशल कलात्मकता की गवाही देते हैं, जिनका प्रत्येक धागा सांस्कृतिक अस्मिता के

गौरव से बुना हुआ होता है। नगा योद्धाओं द्वारा पहने जाने वाले विस्तृत टैटू से लेकर गुजराती आदिवासी दुल्हनों के हाथों में सजने वाली नाजुक मेहंदी डिज़ाइन तक शरीर की ये सजावटें, पहचान, आध्यात्मिकता और सुंदरता की अभिव्यक्ति के रूप में काम करती हैं और आदिवासी बैग, टोपी, जूते और बेल्ट जैसी सहायक सामग्री आदिवासी शिल्प कौशल की दक्षता और संसाधनशीलता को दर्शाती हैं। वे जनजातियों और उनके प्राकृतिक परिवेश के बीच गहरे संबंध को दर्शाती हैं। ये भारतीय वस्त्र, आभूषण, वेशभूषा और शरीर की सजावटें न केवल भारत के आदिवासी समुदायों की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत का जश्न मनाते हैं बल्कि ये अपने लचीलेपन, रचनात्मकता और स्थायी विरासत के सजीव अनुस्मारक के रूप में भी काम करते हैं।

भारत के जनजातीय व्यंजन देश के स्वदेशी समुदायों की समृद्ध पाक विरासत की आकर्षक झलक पेश करते हैं। पूर्वोत्तर की बैम्बू शूट करी, देशी मसालों से भरपूर, अपनी अनूठी सुगंध से स्वादेन्द्रियों को मंत्रमुग्ध कर देती है। संथाल जनजाति का साओ आलू, सरसों के तेल और स्थानीय मसालों का एक मज़ेदार मिश्रण पेश करता है। मिज़ोरम में, बांस में भाप दिलाई हुई मछली प्राकृतिक संसाधनों के रचनात्मक उपयोग पर प्रकाश डालती है, जबकि गोंड जनजाति की लाल चींटी की चटनी, भोजन को तीखा और मसालेदार बनाती है। भील व्यंजन में महुआ फूल की सब्जी पेश की जाती है, जो फूलों वाले सत्व के साथ प्रकृति की उदारता का जश्न मनाती है। लिट्टी चोखा, आदिवासी समुदायों का एक प्रमुख व्यंजन है, जिसमें भुने हुए गेहूं के आटे के गोले को मसालेदार बेसन के साथ मिलाया जाता है, जिसे स्वादिष्ट व्यंजनों के साथ परोसा जाता है। गढ़वाली जनजातियों के सिसुनक साग में सरसों के तेल और मसालों के साथ पकाई गई हरी सब्जियां होती हैं, जबकि विभिन्न आदिवासी समुदायों द्वारा बनाई गई चावल की बीयर, उत्सव में आनददायक पल प्रदान करती है। ये व्यंजन न केवल स्वादिष्ट होते हैं बल्कि पाक कला की सरलता, सांस्कृतिक समृद्धि और प्रकृति से जुड़ाव के प्रमाण के रूप में भी काम करते हैं।

भारत के जनजातीय समुदाय पारंपरिक कपड़ों के जीवंत डिज़ाइनों के माध्यम से अपनी सांस्कृतिक पहचान को संजोते हैं। फैनेक और इन्नाफी मणिपुरी महिलाओं की सुंदरता को बढ़ाते हैं, जबकि फिरन कश्मीरियों को गरमाहट देने के साथ-साथ उनकी सुंदरता को भी बढ़ाते हैं। लुगडे महाराष्ट्र में गोंड महिलाओं को रंगों में सराबोर कर देता है, और साड़ी राजस्थान में भील महिलाओं की सुंदरता को बढ़ा देती है। उत्तराखंड में गढ़वाली महिलाओं पर घाघरा चोली शीशे के काम के साथ खूब जंचती है, जबकि जनजातीय शॉल नगा पुरुषों और महिलाओं को गरमाहट देने के साथ साथ उनकी परंपरा को भी दर्शाते हैं। संथाल पुरुष धोती पहनकर आत्मविश्वास से चलते हैं, जबकि मुंडा पुरुष लंगोटी की सादगी को चुनते हैं। लुंगी पूरे भारत में आदिवासी पुरुषों की कमर की शोभा बढ़ाती है, और गमछा ओरांव पोशाक में परंपरा का स्पर्श जोड़ते हैं। अंगामी नगा शॉल भव्यता प्रदर्शित करता है, और असम के मेखेला चाडोर्स कालातीत सुंदरता की बात करते हैं। पंचेस तुलु पुरुषों की पोशाक में आकर्षण को जोड़ते हैं, जबकि लम्बानी स्कर्ट अपने रंगों से चकाचौंध करती हैं। पट्टू पावदाई इरुला लड़कियों को आकर्षण से सुशोभित करती है, और संथाल पुरुष गर्व से झुंघा पहनते हैं। गड्डी जनजाति की हिमाचली टोपियों से मनमौजीपन की झलक आती है, और बंजारा महिलाएं फ्लेयर वाले कंजारियों को पहन कर इठलाती हैं। खासी पुरुष कुपियाह को बड़े रौब से पहनते हैं। ये पारंपरिक परिधान न केवल भारत के जनजातीय समुदायों के शरीर को सुशोभित करते हैं, बल्कि संस्कृति, परंपरा और पहचान की एक ऐसी शृंखला भी बुनते हैं जो शानदार और कालातीत दोनों है।

समकालीन फैशन जनजातीय कपड़ों की जीवंत और उदार शैलियों को अपनाता है, जो पारंपरिक सौंदर्यशास्त्र को आधुनिक रुझानों के साथ सहजता से मिश्रित करता है। बारीकी से तैयार किए गए पैटर्न से सजी ट्राइबल प्रिंट ड्रेस से लेकर बोल्ड डिज़ाइन वाले ट्राइबल प्रिंट टॉप तक, फैशनपरस्तों ने आदिवासी-प्रेरित फैशन के आकर्षण को अपना लिया है। ऊपर पहनने वाले कपड़ों में जनजातीय कढ़ाई वाली जैकेटों से कारीगर शिल्प कौशल का पुट दिखाई देता है, जबकि जनजातीय प्रिंट वाली स्कर्ट और जनजातीय प्रिंट वाली पैंटों में प्रिंट काफी आकर्षक लगते हैं। आदिवासी मोटिफ वाले नेकलेस, झुमके और हैंडबैग जैसे सहायक उपकरण कपड़ों में एक अलग तरह का आकर्षण पैदा करते हैं। किसी भी पहनावे में जनजातीय पहनावे से प्रेरित प्रिंट में जनजातीय प्रिंट स्कार्फ और जनजातीय प्रिंट स्विमवीयर के लिए कई प्रकार के विकल्प मिलते हैं। इसी तरह से ट्राइबल प्रिंट किमोनोस में स्टाइलिश लेयरिंग विकल्प मिलते हैं, और ट्राइबल प्रिंट फुटवियर, एथनिक पैटर्न के साथ ट्रेंडी जूतों को एक अच्छा रूप देते हैं। जनजातीय फैशन के तत्वों को समकालीन शैलियों में शामिल करके, फैशन प्रेमी एक बोल्ड फैशन स्टाइल अपनाते हुए स्वदेशी जनजातियों की सांस्कृतिक समृद्धि और विविधता की सराहना एवं प्रशंसा करते हैं।

भारत के जनजातीय समुदाय एक समृद्ध कलात्मक विरासत के संरक्षक हैं, जो जीवंत कला और शिल्प के बहुआयामी रूपों को दर्शाते हैं और मंत्रमुग्ध कर देते हैं। महाराष्ट्र में आदिवासी जीवन को दर्शाने वाली वारली पेंटिंग के लयबद्ध स्ट्रोक से लेकर मध्य प्रदेश में पौराणिक कहानियों को बताने वाली गोंड कला के जटिल डिज़ाइन तक, इन समुदायों की कलात्मक कौशल विस्मयकारी है। ओडिशा के पट्टचित्र स्क्रॉल पौराणिक कथाओं को बढ़ी गूढ़ता के साथ उजागर करते हैं, जबकि चांदी, मोतियों और सीपियों से तैयार किए गए आदिवासी आभूषण पहनने वालों की सुंदरता को प्रतीकात्मक रूप से और बढ़ा देते हैं।

पूर्वोत्तर भारत का बांस शिल्प स्थिरता और उपयोगिता की कहानियां बुनता है, जबकि छत्तीसगढ़ की ढोकरा धातु की ढलाई कालातीत धातु की मूर्तियों में आदिवासी रूपांकनों को अमर बनाती है। प्रत्येक कलाकृति, चाहे वह जनजातीय वस्त्रों के नाजुक धागे हों या जनजातीय मिट्टी के बर्तनों की मिट्टी– आकर्षण, न केवल कलात्मक निपुणता को दर्शाता है बल्कि सांस्कृतिक विरासत और परंपरा से गहरा संबंध भी दर्शाता है। जनजातीय कला और शिल्प के माध्यम से, भारत के स्वदेशी समुदाय अपनी पहचान का जश्न मनाते हैं, अपनी कहानियों को संरक्षित करते हैं और अपनी रचनात्मकता को दुनिया के साथ साझा करते हैं।

भारत के जनजातीय समुदायों की आध्यात्मिक दुनिया प्राचीन मान्यताओं, रहस्यमय अनुष्ठानों और प्रकृति के साथ गहरे संबंध से बुना हुआ एक विहंगम कोलाज है। इन स्वदेशी समूहों के लिए, आध्यात्मिकता जीवन के हर पहलू में व्याप्त है, और उनके विश्व दृष्टिकोण को आकार देती है और प्राकृतिक और अलौकिक क्षेत्रों के साथ उनके संवाद का मार्गदर्शन करती है। पैतृक आत्माओं और आदिवासी देवताओं की पूजा से लेकर पवित्र परिदृश्यों और प्राकृतिक तत्वों के प्रति श्रद्धा तक, आदिवासी पृथ्वी की लय और जीवन के चक्रों में परमात्मा का अनुभव करते हैं। संगीत, नृत्य और कहानी कहने से जुड़े अनुष्ठान और समारोह, आध्यात्मिक क्षेत्र के साथ जुड़ने, आशीर्वाद, सुरक्षा और ब्रह्मांड के साथ सद्भाव की तलाश के लिए माध्यम के रूप में काम करते हैं। पवित्र उपवन, पहाड़ियां, नदियां और जंगल अभयारण्य हैं जहां आदिवासी आत्माओं से साक्षात्कार करते हैं और जरूरत के समय में सांत्वना तलाशते हैं। अपनी आध्यात्मिक प्रथाओं के माध्यम से, आदिवासी अपने आसपास की दुनिया के साथ परस्पर जुड़ाव की गहरी भावना रखते हैं, सभी जीवित प्राणियों के प्रति सम्मान को बढ़ावा देते हैं और अपने पूर्वजों के ज्ञान का सम्मान करते हैं। भारत के आदिवासियों की आध्यात्मिक दुनिया में, पवित्रता और धर्मनिरपेक्षता एक–दूसरे से जुड़े हुए हैं, जो अस्तित्व की गहन और कालातीत समझ को प्रदर्शित करते हैं।

जनजातीय संस्कृतियों पर बाज़ार–संचालित मूल्यों को थोपने से उनकी विशिष्ट पहचान और परंपराओं पर गहरा खतरा पैदा हो गया है। उपभोक्तावाद और व्यावसायीकरण से प्रेरित बॉलीवुड की रचनात्मक संस्कृति का व्यापक प्रभाव, आदिवासी विरासत की प्रामाणिकता और समृद्धि को कमज़ोर करता है। जैसे–जैसे आदिवासी समुदाय ऐसे प्रभुत्व वाले आख्यानों को अपनाने का प्रयास करते हैं, वे अपनी सांस्कृतिक अभिव्यक्ति और ज्ञान को खोने का जोखिम उठाते हैं। यह समरूपीकरण मानवता की विविध टेपेस्ट्री को नष्ट कर देता है, यह इसे एक मानकीकृत और अक्सर सतही प्रतिनिधित्व से प्रतिस्थापित कर देता है। इसके अलावा, बड़े पैमाने पर उपभोग के लिए जनजातीय कला रूपों का वाणिज्यीकरण उनके सांस्कृतिक महत्व का शोषण करता है, जिससे शोषण और हाशिये पर जाने का चक्र लगातार बना रहता है। बाजार–संचालित वैश्वीकरण के दबावों के बीच आदिवासी संस्कृतियों के आंतरिक मूल्य को पहचानना और उनकी अखंडता को संरक्षित करना अत्यावश्यक है।

भारत में एक राष्ट्रीय जनजातीय सांस्कृतिक नीति देश के जनजातीय समुदायों की समृद्ध और विविध सांस्कृतिक विरासत का सम्मान, संरक्षण और प्रचार करने के लिए अनिवार्य है। इन समुदायों के पास अनूठी भाषाएं, परंपराएं, कलाएं और रीति–रिवाज़ हैं जो भारत की सांस्कृतिक संरचना में योगदान करते हैं। ऐसी नीति आदिवासी संस्कृति के संरक्षण और दस्तावेज़ीकरण को सुनिश्चित करने, त्यौहारों और प्रदर्शनियों के माध्यम से सांस्कृतिक विविधता को बढ़ावा देने, कलाकारों और कारीगरों के समर्थन के माध्यम से आदिवासी समुदायों को सशक्त बनाने, शैक्षिक पाठ्यक्रम में आदिवासी संस्कृति को एकीकृत करने, सांस्कृतिक बुनियादी ढांचे को विकसित करने, अनुसंधान और दस्तावेज़ीकरण पहल का समर्थन करने, लुप्तप्राय जनजातीय भाषाओं को पुनर्जीवित करने, पारंपरिक ज्ञान की सुरक्षा करने, सांस्कृतिक पहल में सामुदायिक भागीदारी को सुविधाजनक बनाने और हितधारकों के बीच सहयोग और साझेदारी को बढ़ावा देनेके लिए महत्वपूर्ण है। जनजातीय संस्कृति के महत्व को पहचान कर और सहायक नीतियों को लागू करके, भारत आने वाली पीढ़ियों के लिए अपने जनजातीय समुदायों के संरक्षण और समृद्धि को सुनिश्चित करते हुए अपनी सांस्कृतिक विविधता का जश्न मना सकता है। ❑

बस्तर की कुछ अनूठी परम्पराएं

बस्तर की कुछ परम्पराएं आपको एक रहस्यमय संसार में पहुँचा देती हैं। वह अचंभित किए बगैर नहीं छोड़ती। वनवासियों के तौर-तरीके हमें सोचने पर मजबूर करते हैं कि चांद पर पहुँच चुकी इस दुनिया में और भी बहुत कुछ है, जो सदियों पुराना है, अपने उसी मौलिक रूप में जीवित है। बुराई पर अच्छाई की जीत के प्रतीक दशहरे

को देशभर में उत्साह के साथ मनाया जाता है। इस दिन भगवान राम ने लंकापति रावण का वध कर देवी सीता को उसके बंधन से मुक्त किया था। इस दिन रावण का पुतला जलाकर लोग जश्न मनाते हैं। लेकिन भारत में एकमात्र बस्तर ऐसी जगह है जहां 75 दिनों तक दशहरा मनाया जाता है लेकिन रावण नहीं जलाया जाता है।

छत्तीसगढ़ के आदिवासी-बहुल इलाके बस्तर में मनाया जाने वाला यह अनूठा दशहरा **'बस्तर दशहरा'** के नाम से चर्चित है। इस दशहरे की ख्याति इतनी अधिक है कि देश के अलग-अलग हिस्सों के साथ-साथ विदेशों से भी सैलानी इसे देखने आते हैं। बस्तर दशहरे की शुरुआत श्रावण (सावन) के महीने में पड़ने वाली हरियाली अमावस्या से होती है। इस दिन रथ बनाने के लिए जंगल से पहले

लकड़ी लाई जाती है। इस रस्म को 'पाट जात्रा' कहा जाता है। यह त्यौहार दशहरा के बाद तक चलता है और 'मुरिया दरबार' की रस्म के साथ समाप्त होता है। इस रस्म में बस्तर के महाराज दरबार लगाकर जनता की समस्याएं सुनते हैं। यह त्यौहार देश का सबसे ज़्यादा दिनों तक मनाया जाने वाला त्यौहार है|

मिस्त्र के पिरामिड तो पूरी दुनिया का ध्यान खींचते हैं, दुनिया के आठ आश्चर्य में शामिल हैं। लेकिन बस्तर में भी कुछ कम अजूबे नहीं हैं। यहां भी एक ऐसी ही अनोखी परंपरा है, जिसमें परिजन के मरने के बाद उसका स्मारक बनाया जाता है। भले ही वह मिस्त्र जैसा भव्य न हो, लेकिन अनोखा ज़रूर होता है। इस परंपरा को 'मृतक स्तंभ' के नाम से जाना जाता है। दक्षिण बस्तर में मारिया और मुरिया जनजाति में 'मृतक स्तंभ' बनाए बनाने की प्रथा अधिक प्रचलित है। स्थानीय भाषा में इन्हें 'गुड़ी' कहा जाता

है। प्राचीनकाल में जनजातियों में पूर्वजों को जहां दफनाया जाता था, वहां 6 से 7 फीट ऊंचा एक चौड़ा तथा नुकीला पत्थर रख दिया जाता था। पत्थर दूर पहाड़ी से लाए जाते थे और इन्हें लाने में गाँव के अन्य लोग मदद करते थे।

छत्तीसगढ़ के आदिवासी इलाकों की माड़िया जाति में

परंपरा 'घोटुल' को मनाया जाता है। घोटुल में आने वाले लड़के-लड़कियों को अपना जीवनसाथी चुनने की छूट होती है। घोटुल को सामाजिक स्वीकृति भी मिली हुई है। घोटुल गाँव के किनारे बनी एक मिट्टी की झोपड़ी होती है। कई बार घोटुल में दीवारों की जगह खुला मंडप होता है।

स्रोत https://bastar.gov.in/

SUBSCRIPTION FORM

Tick (✓) appropriate column

Print version Plans

6 months	Rs. 265/-	( )
1 year	Rs. 530/-	( )
2 Year	Rs. 1000/-	( )
3 Year	Rs. 1400/-	( )

E-version Plans

6 months	Rs. 200/-	( )
1 year	Rs. 400/-	( )
2 Year	Rs. 750/-	( )
3 Year	Rs. 1050/-	( )

Employment News
WEEKLY
Login to https://eneversion.nic.in/ to subscribe @ ₹ 530 per annum (with complimentary e-version)
VOL. XLVIII ISSUE NO. 40 PAGES 48 NEW DELHI 30 DECEMBER 2023 - 5 JANUARY 2024 ₹12.00
India's Critical Minerals Mission
Driving Sustainability & Self Reliance
Ritesh Kumar
HAPPY NEW YEAR 2024

( ) **Employment News**

( ) **Rozgar Samachar–Hindi**

( ) **Rozgar Samachar–Urdu**

Demand Draft/Cheque should be in favour of 'Employment News'. Attach original copy of Demand Draft/Cheque with the form

Please fill all the details in CAPITAL Letters

Name: ______________________________

Postal Address: ______________________________

______________________________ Pin Code: __________

Landline Ph.:__________________ Mobile:__________________

Email Id: ______________________________

Send the filled form to:
Employment News,
Room No. 783, 7th Floor,
Soochna Bhawan,
Lodhi Road, New Delhi-110003

For daily updates:
www.employmentnews.gov.in
www.rozgarsamachar.gov.in

Online payment facility is also available for both plans.

Scan & Pay

@Employ_News **@EmploymentNews** **www.eneversion.nic.in**

कुल पृष्ठ : 52
आई.एस.एस.एन. 0971-8451
प्रकाशन की तिथि : 1 जून 2024
डाक द्वारा जारी होने की तिथि : 5-6 जून, 2024

R.N.I/708/57
P&T Regd. No. DL (S)-05/3164/2024-26
Licenced under U (DN)-54/2024-26
to Post without pre-payment at R.M.S. Delhi.
DL(DS)-49/MP/2022-23-24 (Magazine Post)

प्रकाशक और मुद्रक : शुभा गुप्ता, अपर महानिदेशक, प्रकाशन विभाग, सूचना भवन, सीजीओ कॉम्पलेक्स, लोधी रोड, नई दिल्ली-110003
मुद्रक : जे.के. ऑफसेट ग्राफिक्स, बी-278, ओखला इंडस्ट्रीयल एरिया, फेस-1, नई दिल्ली-110020 वरिष्ठ संपादक : ललिता खुराना